भारतीय संकटों का निदान

(सतयुग का सिद्ध मार्ग)

9.4

लेखक—

कन्हैयालाल गुप्त

भारतीय संकटों का निदान

(सत्युग का सिद्ध मार्ग)

लेखक—

कन्हैयालाल गुप्त

प्रकाशक—
कन्हैयालाल गुप्त,
आसभैरो, काशी

मूल्य—बारह आना मात्र
दीपावली
६ नवम्बर सन् १९५३

मुद्रकः—
पृथ्वीनाथ भार्गव
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस।

भारतीय संकटों का निदान

(सत्युग का सिद्ध मार्ग)

'खाने और कपड़े की व्यवस्था के उपरान्त बचत की मुद्रा उद्योगी होती है जो जन मध्य में थिरकती रहती है और प्रत्येक को उत्साही, उद्यमी और प्रगतिशील रखती है, बशर्ते कानून अनुकूल हों और जन साहस को सत्तारूढ़ दल की नीति द्वारा कुचल न दिया गया हो।'

—कन्हैयालाल गुप्त

आसभैरो, बनारस।

विषय-सूची

—:o:—

पर्यवेक्षित ग्रन्थों की तालिका

(१) डेमोग्राफिक ईयर बुक, संयुक्तराष्ट्रसंघ, १९४९-५०,५१,५२
(२) स्टैटिस्टिकल ईयर बुक, संयुक्तराष्ट्रसंघ, १९४९-५०,५१,५२
(३) स्टैटिस्किल ऐब्सट्रैक्ट आव इण्डिया, सन् १९४९ जिल्द २
(४) इण्डिया एण्ड पाकिस्तान ईयर बुक सन् १९४९-५०,५१,५२
(५) दि स्टेट्समैन्स ईयर बुक, सन् १९५०,५१,५२
(६) ईयर बुक आन ह्यूमन राइट्स, संयुक्तराष्ट्रसंघ, सन् १९५०-५१
(७) प्राब्लम आव अनइम्प्लायमेण्ट एण्ड इन्फलेशन, संयुक्तराष्ट्रसंघ, सन् १९५०-५१
(८) रेकर्ड एण्ड स्टैटिस्टिक्स ईस्टर्न इकानमिस्ट, त्रैमासिक पत्र
(९) वर्ल्ड इकानमिक रिपोर्ट, सन् १९४८
(१०) सेंसस आव इण्डिया सन् १९३१,५१
(११) स्टैटिस्टिकल एब्सट्रैक्ट आव अमेरिका
(१२) पेटेण्ट आफिस क्लासीफाइड इंवेन्शन्स इण्डेक्स
(१३) इण्टरनेशनल लेबर आफिस-इम्प्लायमेंट, अनइम्प्लायमेंट एण्ड लेबर फोर्स स्टैटिस्टिक्स
(१४) इण्टर नेशनल सर्वे आव सोशल सिक्योरिटी
(१५) इण्टर नेशनल इण्डस्ट्री ईयरबुक-दि इंसाइक्लोपीडिया आव इंडस्ट्रियल प्रोग्रेस
(१६) दि इकानमिक डेवलपमेंट आव इण्डिया, लेखिका वीरा एंस्टी (१९२९)
(१७) दि इंटेलिजेण्टमैन्स रिव्यू आव यूरोप टुडे, लेखक जी. डी. एच. कोले और एम, आई. कोले
(१८) मिरेकल्स आव इन्वेन्शन एण्ड डिसकवरी
(१९) इंजीनियर्स एण्ड मिकैनिक्स इंसाइक्लोपीडिया
(२०) पेटेण्ट्स एण्ड डिजाइंस—दि पेटेण्ट आफिस सोसाइटी सीरीज नं० १
(२१) रिपोर्ट आन एन इंक्वायरी इण्टू कंडीशंन्स आव लेबर इन दि बीड़ी, सिगार एण्ड सिग्रेट इंडस्ट्रीज-लेबर इंवेस्टिगेशन कमेटी गवर्मेण्ट आव इण्डिया
(२२) रिपोर्ट आन दि मार्केटिंग आव टोबैकू इन इण्डिया १९३९, गवर्मेण्ट आव इंडिया

(२३) इण्डियन टोबैकू, इण्डियन सेण्ट्रल टोबैकू कमेटी, गवर्मेंट आव इंडिया (पत्रिका जिल्द १ नं० २)
(२४) दि फाइव ईयर्सप्लान, गवर्मेण्ट आव इण्डिया
(२५) दि फाइव ईयर्सप्लान आव दि सोवियट यूनियन, लेखक जी. टी. ग्रिग्को
(२६) टू दि स्टूडेण्ट्स, गान्धी सीरीज १, लेखक—आनंद टी. हिंगोरानी
(२७) दि गिफ्ट आव फ्रीडम इन अमेरिका, लेखक-अमरीकी श्रम विभाग
(२८) रूरल अमेरिका, लेखक—अमरीकी कृषि विभाग
(२९) फैक्टस एवाउट दि यूनाइटेड स्टेट्स १९५१, लेखक-भारत स्थित अमरीकी सूचना सेवा
(३०) सोशल सिक्योरिटी इन अमेरिका, लेखक-भारतस्थित अमरीकी सूचना सेवा
(३१) इन साइड रेड रशा, लेखक—मलोनी जे० जे०
(३२) इकानमिक कण्डीशन—रशा, पत्रिका
(३३) रशियन सोशल लाइफ एण्ड कस्टम्स
(३४) इण्टरनशनल फाइनेंस, लेखक—हार्टले विदर्स
(३५) मीनिंग आव मनी, लेखक—हार्टले विदर्स
(३६) दि इण्डस्ट्रियल रिकंस्ट्रक्शन आव इण्डिया (१९३७), लेखक—श्री कन्हैयालाल गुप्त

—:o:—

भारत की दूषित अर्थनीति

प्रवाह ही जीवन है। खून का प्रवाह अवरुद्ध होने से अङ्ग शिथिल पड़ सूखते हैं और अन्त में प्रवाह के संपूर्ण अभाव में शरीर की मृत्यु होती है। यह नियम विश्वव्यापी है जो मनुष्य कृत तथा प्राकृतिक दोनों ही व्यवस्थाओं में सामान्यरूप से प्रकट है। राष्ट्र की प्रगति, उन्नति, विकास आदि भी मुद्रा के 'स्वस्थ्य' प्रवाह में निहित हैं। मुद्रा का अभाव और मुद्रा के स्वस्थ्य प्रवाह में अवरोध परिणामतः जन-चेष्टा, उद्योग और विकास को अवरुद्ध करता है, जनता और सरकार में कटुता लाता है और यह अवस्था बनी रहने पर रक्त-क्रान्ति की ओर जनता को प्रोत्साहन देता है। भारत में यों ही वृटिश-शासन-काल में मुद्रा का बड़ा अभाव रहा जो आज स्वतंत्र भारत में भी ज्यों का त्यों बना है। इस अभाव की पूर्ति को कौन कहे, वर्तमान सरकार की गलत मुद्रा नीति ने इसके स्वस्थ्य प्रवाह में भी अवरोध शुरू कर दिया है। नित्य नये कानून, उनके पीछे निहित परेशानियाँ, नवीन टैक्सों और ऋणपत्रों के सूद की मृग मरीचिका दिखाकर द्रव्य खींच लेने की सरकारी नीति के कारण आज जन मध्य में द्रव्य-प्रवाह रुक रहा है। मृत्युकर भी आग में घृत ही है। वह भी द्रव्य को जन-चेष्टा (औद्योगिक विकास आदि) की तरफ से खींचकर बैंकों की ही ओर प्रवाहित करेगा। गुलामी से मुक्ति पाने के आन्दोलन में जनता के समक्ष जो महत्वाकांक्षा थी, विश्व के अन्य राष्ट्रों जैसे सुखों की साज सज्जा के सुखद स्वप्न थे, वे आज सब सरकारी अर्थनीति के कारण धराशायी हो गये हैं।

हमें अपनी त्रुटियों को समझने का एकमात्र सहज साधन तुलनात्मक विवेचन है। एतदर्थ भारत,

अमेरिका और रूस पर, उनके उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर, हम यहाँ विचार करने जा रहे हैं। इस कार्य के लिए उन देशों की मुद्राओं को अमरीकी डालर में बदल कर यहाँ रखा गया है।

अमेरिका में सन् १९३७ की तुलना में सन् १९५२ तक उपलब्ध मुद्रा (व्यवहार में मुद्रा और बैंकों में जमा मुद्रा) में ४·४ गुना वृद्धि हुई। उसी काल में कनाडा में ५.१ गुना वृद्धि हुई। रूस के संबन्ध में आँकड़े प्राप्त नहीं हो सके कारण उसकी 'उपलब्ध मुद्रा' का प्रकाशन नहीं होता। पर उसके सन् १९३७ के बजट की तुलना में सन् १९५३ तक के बजट (खर्च के मद) में ५·६ गुना वृद्धि हुई। इस आधार पर, रूस में उपलब्ध-मुद्रा में ५·६ गुना वृद्धि मानी जा सकती है। उसी काल में, हमारे देश भारत की उपलब्ध-मुद्रा में केवल २·६ गुना वृद्धि हुई।

अब देखें कि अमेरिका में, जिस औसत वस्तु का थोक भाव सन् १९३७ में १०० था उसी का सन् १९४९ में १८० हुआ। कनाडा में १८६ और ब्रिटेन में १८७ हुआ। रूस का भाव प्राप्त न हो सका। इधर भारत में उसी काल में थोक-भाव १०० से एकदम बढ़कर ३८१ हो गया। अर्थात्, भारत में जहाँ उपलब्ध मुद्रा की वृद्धि २·६ गुना ही हुई, वहीं जन-साधारण को प्राप्त होने वाले सामान का थोक-भाव ३.८१ गुना अधिक हो गया और वही थोक भाव सन् १९५० में बढ़कर ४.१२ गुना हो गया। उन्नतिशील देशों में जिन्सों के थोक-भाव में जब वृद्धि केवल १.८० गुना से लगाकर १.८७ गुना तक ही हुई तभी उन्होंने निर्माण और उत्पादन में प्रगति के हेतु अपनी उपलब्ध मुद्रा में—(अमेरिका ने ४·४, रूस ने ५·६ गुना तक) वृद्धि कर दी। अर्थात् उन देशों में जिन्सों के बढ़ते मूल्यों की तुलना में उपलब्ध मुद्रा वृद्धि २·४ से ३ गुना तक अधिक हुई। पर भारत में बढ़ने को कौन कहे उलटे वह घट कर ०.५० हो गयी। यह अवस्था, इतनी दर्दनाक है कि विचारशीलों के हाँथ-पाँव ठण्डे पड़ने लगते हैं! इसे यों समझिये कि भारत को द्वितीय-महायुद्ध के पूर्व की अवस्था को प्राप्त होना तो दूर रहा, उलटे जैसे वह ५० वर्ष पीछे की अवस्था को चला गया। जनता आज आज़ादी में जो समझने लगी है कि 'गुलामी बेहतर थी' इसके मूल में सर्वप्रथम कारण यही है।

देश के उद्योग-धन्धे और अन्य रोजगार जो महायुद्ध से पूर्व आनन्दपूर्वक चल रहे थे और वृद्धि पर थे, आज बन्द होते जा रहे हैं। इसका भी मुख्य कारण यही है। जन-साधारण के पास जिन्सों के हेर-फेर के लिए द्रव्य का अभाव हो गया है, वह असहाय हो मर रहा है। उत्पा-

दन शुष्क पड़ता जा रहा है। बेकारी बढ़ती जा रही है। जन-समुदाय निरुद्यमी हो रहा है। आज़ादी में जहाँ चारो ओर वृद्धि ही वृद्धि होनी चाहिये थी, वहाँ मृत्यु-सा सन्नाटा छाया हुआ है।

लड़ाई के पहले जो भी औसत खाद्य उत्पादन रहा, उसमें सन् १९५० तक अमेरिका में ३५ और युनाइटेड किंगडम में ३२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। उसी काल में भारत केवल २ प्रतिशत वृद्धि कर सका। अन्य कृषि-उत्पादन जैसे रूई, तेलहन आदि में जब अमेरिका में २९ प्रतिशत, यू० के० में ३० प्रतिशत की वृद्धि हुई तब भारत में, इसके विपरीत, १ प्रतिशत की हानि ही हुई। आम औद्योगिक उत्पादनों में, उसी काल में, जब अमेरिका ने ५६ प्रतिशत, रूस ने १०४ प्रतिशत की वृद्धि की तब भारत केवल १८ प्रतिशत की ही वृद्धि कर सका। लेकिन, जब से भारत स्वतंत्र हुआ, तब से १९५१ तक वह केवल ८ प्रतिशत औद्योगिक-उत्पादनों में वृद्धि कर सका और इसी की तुलना में सन् ४८-५१ में रूस ने ७० प्रतिशत, जर्मनी ने ११८ प्रतिशत, जापान ने १०० प्रतिशत, अमेरिका ने १५ प्रतिशत और यू० के० ने १७ प्रतिशत की वृद्धि की। भारत ने कपड़े के उद्योग में, जहाँ लड़ाई के पहले की तुलना में १९४४ तक २४.५ प्रतिशत की वृद्धि की थी वहाँ सन् १९५१-५२ में यह वृद्धि प्रगति को कौन कहे उल्टे लड़ाई के पूर्व की अवस्था से भी ३.८ प्रतिशत घट गयी। भारत की औद्योगिक प्रगति का मार्ग संकटों से भरा है। भारत में जो कुछ भी प्रगति सामने आयी वह केवल कृषि-संबन्धी औद्योगिक उत्पादनों के ही कारण न कि अन्य उत्पादनों के कारण जिनके लिए भारत विदेशों पर आश्रित है।

आम तौर पर औद्योगिक देशों में व्यवहार मुद्रा से कई गुना अधिक जनता का बैंकों में जमा रहता है, जिसे वह जब चाहे बैंकों से प्राप्त कर सकती है। अमेरिका में यह धन सन् १९२९ में ६ गुना था और सन् १९५० में ४ गुना हो गया (अर्थात् इस काल में अधिक धन व्यवहार में आ गया)। परन्तु भारत में व्यवहार -मुद्रा (अर्थात् जितनी मुद्रा बाजार में चालू है) की तुलना में बैंकों में उसका आधा ही जमा चला आ रहा है। भारत की सन् १९२९ में व्यवहार-मुद्रा ४ अरब ६१ करोड़ रूपया रही और बैंकों में जमा केवल २ अरब १ करोड़ रहा। सन् १९५० में व्यवहार मुद्रा बढ़कर १२ अरब ७६ करोड़ हो गयी तब भी जमा मुद्रा ६ अरब ८९ करोड़ ही रही। इन दोनों ही धनों का सन् १९५० से बराबर घटना जारी है और सन् १९५२ के अन्त में दोनों रकमें मिलकर

करीब २ से ३ अरब रूपयों तक घट गयी हैं।

बैंकों की ओर से जनता को उद्योग तथा व्यापार आदि के लिए कर्ज़ मिलता है पर इसमें भी भारत की महान् दुर्दशा है। सन् १९५० में अमरीकी बैंकों से वहाँ की जनता को ५४.९ अरब डालर सुलभ था। भारत में केवल ४ अरब ४५ करोड़ रुपया ही सुलभ हो पाया जो डालर में ०.९२४ अरब डालर होता है। मतलब यह कि भारत की तुलना में अमरीकी जनता को बैंक से ५९ गुना कर्ज़ सुलभ हुआ। इस प्रकार, प्रति व्यक्ति को अमेरिका में भारत की तुलना में १३५·७ गुना अधिक कर्ज बंकों से सुलभ रहता है।

हर देश में उद्योग व्यापार इत्यादि के लिए व्यक्ति पीछे जो मुद्रा उपलब्ध है, उसे तुलनार्थ अमरीकी डालर में बदलने पर यह आँकड़े आते हैं—अमेरिका में प्रति व्यक्ति पीछे ८३५ डालर उपलब्ध-मुद्रा है। कनाडा में ३८०, यू० के० में २९९ और भारत में केवल ११ ही, जो घोर मुद्रा अभाव का द्योतक है।

कैसी हीनावस्था है भारतीय जनता की! न प्रचलन में ही इसके पास द्रव्य है, न इसका रूपया ही बैंकों में है, न बैंकों से कर्ज ही इसे प्राप्त है। इसके भी ऊपर, सरकार की आंख है कि जनता में जो रुपया है उसे भी खींच लिया जाय। सूद की दरें बढ़ाकर, बैंकों को हिदायतें देकर कि लोगों को कर्ज़ देना बंद कर दिया जाय, अन्य नाना प्रकार से रुपया खींच लेने की योजना चलाकर, टैक्स लगाकर जनता को पामाल किया जा रहा है। इसका नतीजा सामने है। जनता त्राहि-त्राहि करने लगी है। उसके उद्योग-धन्धे और रोज़गार विनष्ट होने लगे हैं। उद्योग-धन्धों का पनपना बन्द हो गया है। जनता शिथिल पड़ कर, आशाएँ छोड़ कर, खुदकशी के लिए विवश है। आज राष्ट्र की ३५ करोड़ ६८ लाख जनता के बीच केवल १० अरब रूपया ही प्रचलन में है। इसमें भी लगभग ५ अरब सरकारी कार्यों और टैक्सों में फँसा रहता है। ५ अरब रूपयों से वह किसी प्रकार अपने खाने-पीने की ही वस्तुओं में खरीद-बिक्री कर सकती है। बाकी कार्यों या प्रगति के लिए द्रव्य का साधन उसके पास नहीं रह गया है। ब्रिटिश शासन का भी ठीक यही अस्त्र रहा जिससे उसने भारत के उद्योगों को पनपने नहीं दिया। फिर भी, उसके काल में जो कुछ मुद्रा उसने भारत को दिया या जो कुछ सोना-चाँदी भारत के पास था, उसी के बलपर, ब्रिटिश जनों की इच्छा के विरुद्ध लड़कर, भारत ने कपड़े और चीनी की मिलें स्थापित कर लीं। पर, आज इस आज़ाद भारत में, देशभक्तों के शासन-काल में, उतना भी सम्भव नहीं! बाज़ार में माल की माँग

है पर उत्पादन में वृद्धि नहीं। आदमियों की आवश्यकता है, पर बेकारी बढ़ती जा रही है।

सन् १९२९ में भारतीय मुद्रा के पीछे ०.२१७ अरब डालर का सोना सुरक्षित था और १९५० में वह ०.२४७ अरब का हो गया। मगर सन् १९३० से सन् १९४९ तक भारत से ०.७२१ अरब डालर का सोना विदेश चला गया अर्थात् मुद्रा के पीछे जितना सोना है उसका तिगुना सोना भारतीय घरों से निकल विदेश चल गया।

कार्ल मार्क्स के सिद्धान्त को मानने वाला रूस, जिसका पिता लेनिन था, द्रव्य को नहीं छोड़ सका। देश को सम्पन्न बनाने के लिए, मुद्रा को आदान-प्रदान का एकमात्र साधन समझ, विचार युक्त योजना के अन्तर्गत वह बराबर उसे बढ़ा-चढ़ा कर देता गया। मगर हमारी भारत सरकार इसको अन्य रूप में ही अनुभव कर रही है। रूस, अपने उपलब्ध मुद्रा के आँकड़े तथा उसके पीछे उसने कितना सोना रखा है, इसे न बताकर तथा अपने सोने-चाँदी की खानों का ब्यौरा छिपाकर, उद्योगधन्धे बढ़ाता हुआ जनता को आराम दे रहा है। यदि द्रव्य के पीछे सोने-चाँदी की ही आधार-तुला मानी जाय तब फिर सन् १९३१ में 'प्रबल सम्राट्' ब्रिटेन ने ही उसे क्यों तिलांजलि दे दी? दुनिया का धन-कुबेर अमेरिका सन् १९३३ में अपने सिक्के का सोना क्यों घटा बैठा? स्पष्ट है कि वहाँ सन् १९३३ के पहले २०.६७ डालर के पीछे १ औंस सोना था, पर वहीं उसके बाद ३५ डालर के पीछे १ औंस सोना किया गया।

रूस में सन् १९३७ में ५.६३०७ रूबल १ ग्राम सोने के बराबर था। पर सन् १९४७ में रूस ने अपनी प्रचलित १० मुद्रा को अपने एक नये सिक्के से क्यों बदला? सन् १९४९ में उसने अपने ५.३० सिक्कों को १ अमरीकी डालर के बराबर क्यो किया तथा सन् १९५० में ४ रूबल को एक अमरीकी डालर के बराबर क्यों कर डाला?

जब दुनिया के प्रमुखतम राष्ट्रों की यह नीति और दशा है तब इस धोखे की टट्टी—सोने के चक्कर में फँस कर जनता को निरुद्यमी और बेकार बनाने से क्या लाभ? यह एक खुला प्रश्न है। इस पर भारत सरकार ही विचार करे।

अभी हाल में राष्ट्रसंघ ने अपने सदस्य राष्ट्रों से युद्धसमाप्ति के बाद की बेकारी और मुद्रावृद्धि पर कुछ प्रश्न पूछे थे। उसने पूछा था कि इस सम्बन्ध में सदस्य राष्ट्रों ने अपने देश में कौन-सा मार्ग अपनाया? अन्य राष्ट्रों के साथ-साथ रूस, अमेरिका और भारत ने भी इसका उत्तर दिया था। वे उत्तर संक्षेप में जनता के सामने विचारार्थ उपस्थित हैं जिनसे तीनों

राष्ट्रों की नीति स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है।

रूस का उत्तर :—

रूस ने लिखा कि "सन् १९५० में कच्चे माल, ईंधन और बिजली की शक्ति का अच्छा उपयोग हुआ। माल की बर्बादी रोकी गयी। जनता की उत्पादन शक्ति बढ़ी और व्यस्त चालू धन के पीछे उत्पादन में भी वृद्धि लायी गयी। चतुर्दिक उन्नति, उद्योग, यातायात और मजदूरों के उत्पादन में वृद्धि एवं माल का उत्पादित मूल्य कम पड़ने के परिणामस्वरूप वर्तन, मशीन, अन्य सामान, दवा, मकानों के सामान, लकड़ी, कागज और बिजली की कीमत, रेलभाड़ा, थोक भाव आदि में ६ प्रतिशत की कमी हो गयी। सन् १९५० में ४०० नयी किस्म की तेज़ी से काम करनेवाली मशीनों का भी आविष्कार हुआ। मज़दूरों के शारीरिक परिश्रम और उत्पादन के बोझिल तरीकों को हलका करने के लिए ज़ोरों से यन्त्रीकरण हुआ। तेज़ी से उत्पादन करनेवाले तरीकों की खोज जारी रही। मज़दूरों, इञ्जीनियरों और टेकनिकल (प्राविधिज्ञ) मज़दूरों के आविष्कार और सुझावों पर, जो माल के उत्पादन में वृद्धि लाने वाले और उन्हें सुन्दर बनाने वाले थे; विचार हुआ। ऐसे लगभग ६ लाख आविष्कारों और सुझावों का औद्योगिक प्रगति में प्रयोग किया गया। खेती के भी यन्त्रीकरण में प्रगति रही। रूसी राष्ट्रिय वित्तक्षेत्र (नेशनल एकानमी) में शारीरिक परिश्रम करनेवालों और दफ्तरों में काम करनेवालों की संख्या सन् १९५० में ३ करोड़ ९२ लाख रही, जो सन् १९४९ की तुलना में, २० लाख अधिक है। रूसी प्रतिनिधि ने, एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में, राष्ट्रसंघ के महामंत्री को सूचित किया कि सन् १९५० में रूस ने दिल खोलकर, जनता को ऋण दिये जिससे मकानों का निर्माण तेजी से अग्रसर होता रहे, इत्यादि।"

अमेरिका का उत्तर :—

अमरीकी सरकार ने लिखा कि "सरकारी प्रोत्साहन और सरकारी प्रतिरक्षित (गवर्नमेण्ट ग्रान्टीड) कर्ज की व्यवस्था से मकानों का निर्माण तेज़ी से बढ़ाया गया। लड़ाई समाप्त हो जाने के उपरान्त भी लड़ाई के समय के उत्पादन में प्रगति उसी गति से आगे बढ़ती रही। लोगों का विश्वास प्रगति में बना रहा और लोग कारखानों और सामान के निर्माण में दिल खोलकर रूपया लगाते रहे। सरकार और बैंकों की ओर से लोगों को खूब कर्ज़ दिया गया और उद्योग-व्यापार में बराबर उन्नति बनी रही। कर्ज़ की व्याज-दर भी बहुत कम रही। जनता को सरकार से इतना प्रोत्साहन मिला कि सरकारी कोष, जिसमें नकद का बाहुल्य था, घाटे में आ

गया। व्यक्तिगत सामूहिक आमदनी, जो सन् १९५० के पहले २ खरब १७ अरब डालर पर चलती रही, वह सन् १९५० के अंत में बढ़कर २ खरब ४० अरब डालर पर जा लगी।"

भारत का उत्तर :—

अब भारत का विचित्र उत्तर देखें—"भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। सन् १९५० में भी भारत उसी स्थान पर है जहाँ वह सन् १९४९ में था। बैंक का चेकों से होने वाला व्यापार १.४ प्रतिशत कम हुआ। औद्योगिक प्रगति, कोयले को भी शामिल कर, सन् १९४९ की अपेक्षा सन् १९५० में १ प्रतिशत घट गयी। जनता को कर्ज देने की व्यवस्था न ढीली की गयी और न कड़ी की गयी। बैंकों ने अपने ही ज़रिये धन के मांगों की जो व्यवस्था हो सकी की। कर्ज़ की स्वस्थ व्यवस्था के लिए छोटे-मोटे बैंकों के तोड़ने को प्रोत्साहित किया गया। बैंक से संबन्धित कानून को स्थायी रूप दिया गया कि छोटे-मोटे बैंक समाप्त हो जायँ। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों ने लम्बे अरसेवाले १९४९ के कर्ज की दरें ३.०६ प्रतिशत से बढ़ाकर सन् १९५० में ३.२२ कर दिया। सरकार को कर्ज़ मिलने में कठिनाई हो रही है, अस्तु पंच-वर्षीय योजना में सन् १९५१-५२ में प्रगति कुछ मन्द रहेगी तथा उस वर्ष कुछ नये टैक्स लगाने की व्यवस्था की जायगी। फरवरी सन् १९५१ से एक बहुत ही आवश्यक कदम उठाया जायगा और एक नया ३.५ प्रतिशत का सरकारी कर्ज़ जारी किया जायगा। यह है ट्रेज़री सेविंग डिपाज़िट सर्टीफिकेट—जिससे मध्यम श्रेणी के लोगों के पास भी जो द्रव्य है ले लिया जायगा। सरकार को उम्मीद है कि सूद की आकर्षक दर के कारण जनता की रुचि इसमें बढ़ेगी। जहाँ तक बैंकों द्वारा कर्ज़ देने का प्रश्न है, उसके संबन्ध में सरकारी आदेश सन् १९४९ से लागू हैं (कर्ज कन्ट्रोल)। जनता के उद्योग-धन्धों में द्रव्य लगाने के संबन्ध में 'कैपिटल ईशू कन्ट्रोल' द्वारा नियंत्रण लगा हुआ है। भारत की वर्तमान समस्या यह है कि जहाँ तक अधिक-से-अधिक सम्भव हो सके जनता का द्रव्य पंच-वर्षीय योजना के लिए ले लिया जाय।"

उपर्युक्त उत्तर से स्पष्ट है कि जहाँ अन्य देश अपनी जनता को धन आदि अनेक साधनों से बढ़ावा देते हैं, वहाँ भारत सरकार जनता के बचे-खुचे पैसों को भी सूद की मृग-मरीचिका दिखाकर अपहृत एवं हतोत्साह करती जा रही है।

सन् १९४९ में, अमेरिका में प्रत्येक व्यक्ति की औसत आमदनी १,४५३ डालर रही, रूस में ३०८ डालर, पर, भारत में केवल ५७ डालर रही। रूस अपनी योजना के अन्तर्गत तेजी से जीवन-स्तर की चरम-सीमा

की ओर अग्रसर हो रहा है और अमेरिका लगभग वहाँतक पहुँच चुका है। पर भारत, अँग्रेज़ों के चले जाने के बाद भी, जहाँ था वहीं पड़ा दम तोड़ रहा है। यदि कुछ ही वर्ष यह दशा और रही तो अवस्था इतनी खराब हो उठेगी कि लाल-क्रान्ति हुए विना न रहेगी। व्याधि-के कीटाणु शरीर में ही रहते हैं। शरीर कमज़ोर हुआ कि वे घर दबाते हैं। यदि भारत न संभँला और यहाँ औद्योगिक प्रगति न हुई तो कीटाणु मौके से उभर पड़ेंगे और हमारे देश को कोरिया की तरह बर्वाद कर देंगे। बढ़ती हुई बेकारी का मुख्य कारण औद्योगिक और व्यापारिक प्रगति का मार्ग अवरुद्ध रहना है।

दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में थोक-भाव में चौगुने से अधिक वृद्धि का कारण, विदेशी महाप्रभु, ब्रिटेन, की नीति ही मुख्य रही है। उसी नीति ने भारत में औद्योगिक प्रगति नहीं होने दी। विदेशी प्रभु ने नोट छाप-छाप कर, दाम बढ़ा-चढ़ा कर, जनता में सामान खरीदा। मज़दूरों और रंगरूटों को दिन प्रति दिन अत्यधिक शुल्क देकर भाव एक का चार कर दिया। 'भाव' का सबसे बड़ा शत्रु 'उत्पादन' ही है। इसी प्रकार, बेकारी का प्रधान शत्रु 'उद्योग' है। आज स्वतंत्र भारत की सरकार की 'गलत मुद्रा नीति' ने उत्पादन पर प्रत्यक्षतः अंकुश-सा लगा दिया है और भाव को आज़ादी मिल गयी है। भाव का शत्रु उद्योग ज्यों-ज्यों कमज़ोर पड़ता जा रहा है, बेकारी भी निरंकुश होकर, रक्त-बीज की तरह, आगे बढ़ती चली आ रही है। जनता को उद्योग के निमित्त मुद्रा सुलभ हो और नये-नये कानून, जो उद्योग के लिए हानिकर हों, उनमें शिथिलता आये तब तो उत्पादन बढ़े। तभी भाव घट सकता है और तभी बेकारी नेस्तनाबूद हो सकती है। जनता के सामने उद्यम हो तो वह सुख-चैन की आज़ाद बंसी बजाये। आवश्यकता है भारत में जबरदस्त चतुर्दिक औद्योगिक उन्नति की। सरकार अपनी पंच-वर्षीय योजना के साथ जनता को भी प्रगति का अवसर प्रदान करे तब तो थोड़े काल में ही भारत सम्पन्न हो सकेगा अन्यथा वह अस-म्भव है। जन-समुदाय को, यदि देश में प्रगति का अवसर सरकार दे तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि सरकारी योजनाएँ पीछे रह जायँगी और जनता आगे बढ़ जायगी। सरकारी सहायता के बिना ही भारतीय उद्योग ने, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर ऐसे बड़े-बड़े शहरों का निर्माण, गुलामी के काल में भी, कर डाला। आज़ादी में वह क्या नहीं कर सकती पर अपनी सरकार ही जब जनता की शक्ति में विश्वास न करे तब प्रगति हो कैसे? अकेले

सरकार उतनी प्रगति कदापि नहीं कर सकती जितनी वह अपने साथ ३५ करोड़ जनता को लेकर कर सकती है। जनता उस सरकार का क्या साथ दे जिसकी छत्रच्छाया में वह भूखी और नंगी होकर तड़पे और दम तोड़।

भारत की प्रगति के उपाय

अब यहाँ उन उपायों का संतुलित संकेत भी आवश्यक है जिनको लेकर देश निर्माण में आगे बढ़ जा सकता है और बेकारी का संकट कटना भी निश्चित होगा।

१. उद्योग-निमित्त मुद्रा को जनता के लिए सुलभ करना।

२. भारतीय टेक्नीशियनों (प्राविधिज्ञों) का निर्माण कार्यों के लिए आवाहन करना, चाहे वे उपाधि युक्त हों अथवा न हों पर जो किसी वस्तु के निर्माण की जानकारी रखते हों या किसी वस्तु के निर्माण में कोई उत्तम सुझाव दे सकते हों।

३. देश के वैसे उपलब्ध विचारशीलों से भिन्न -भिन्न वस्तुओं के उत्तमोत्तम निर्माण के तरीकों, औजारों और मशीनों के निर्माण पर सुझाव लेना और उन्हें आपस में परामर्श कराकर जो उचित तरीका हो उसे अपनाना।

४—देश के जितने भी कारखाने बन्द हैं, अंशतः कामों में संलग्न हैं या जहाँ मशीनें उपलब्ध हैं, उनका पूर्ण उपयोग कर सामान का निर्माण करना।

५—उपर्युक्त कारखानों में, उन वस्तुओं का उन तरीकों से उत्पादन करना, जिन पर विचार किया जा चुका है और इसमें जो भी औज़ार, मशीन, (जिग्स एण्ड फिक्चर्स) आदि लगें, उनका स्वयं निर्माण कर लेना।

६—सरकार स्थानीय बैंकों से उक्त प्रकार के कारखानों को कर्ज़ दिलाने की पूरी व्यवस्था करे। जब तक यह कर्ज़ चुकता न हो जाय, बैंकों का नियंत्रण बना रहे या स्थानीय सरकारी किसी प्रकार का नियंत्रण रहे कि कर्ज़े का दुरुपयोग न होने पाये। कर्ज़ चुकता होते ही कारखाने से वह नियंत्रण हटा लिया जाय।

७—क्षेत्रीय प्राविधिज्ञ (टेक्नीकल) परामर्शदाताओं की कमेटी बना दी जाय जो सरकार और क्षेत्रीय कारखानों को परामर्श देती रहे और उन्हें उत्तम सुझावों के निमित्त पुरस्कृत किया जाय तथा उन्हें कारखानों की आमदनी से शुल्क दिया जाय। इस निमित्त खर्च भी कारखानों से लिया जाय। पर

प्रथमावस्था में खर्च सरकार को ही वहन करना होगा।

८—देश में बैंकों की संख्या, जो बहुत ही कम है, बढ़ा दी जाय। भारत में कुल परिगणित १०० बैंक और अपरिगणित ३६४ (नान शेड्यूल्ड) बैंक है। अमेरिका में तो १४,६४० बैंक हैं। रूस में भी ४०,००० सेविंग्स बैंक हैं और प्रत्येक उद्योग के लिए अलग-अलग भी बैंक हैं जैसे खेती के बैंक, टेक्सटाइल बैंक, सिल्क बैंक, लोहा बैंक इत्यादि। सेविंग्स बैंक से जनता को कर्ज मिलता है। उद्योग-कर्ज़ लम्बे और छोटे अर्सों का होता है। रूस में धनाभाव के कारण वैसा कोई उत्पादन कभी नहीं रुकता जिसका कच्चा माल देश में उपलब्ध है।

९—सरकार रिज़र्व बैंक से कर्ज़ लेकर उपर्युक्त कार्यों के लिए स्थानीय बैंकों को कर्ज दे। इस कार्य के लिए जरूरत के अनुसार रिजर्व बैंक कानून में आवश्यक संशोधन कर लिया जाय।

१०—एक केंद्रीय कारखाना (सेण्ट्रल वर्कशाप) और प्रयोग-शाला हो जहाँ प्राविधिज्ञों के सुझाये तरीकों पर अनुसंधान कर उत्पादन के उत्तमोत्तम तरीके निश्चित किये जा सकें।

११—जन-साधारण को और देश के ऐसे सभी अन्य उद्योगों को जो चालू हैं या धनाभाव के कारण प्रगति नहीं कर पा रहे हैं, उपर्युक्त प्रणाली के अन्तर्गत कर्ज़ देना।

१२—सरकार भारतीय नगर और कसबों के मुख्य व्यापार केन्द्रों में अपनी ओर से विक्रय प्रतिष्ठान (स्टोर) खोले और उनमें गेहूँ, चावल तथा स्थानीय प्रचलन के अन्य खाद्यान्न तथा कुछ किस्म के कपड़े निर्धारित मूल्य पर बिक्री के लिए सुलभ रखे। व्यापारी-वर्ग ग्राहकों को उधार इत्यादि की सुविधा देता है। अतः बाजार का भाव लगभग सरकारी दर पर रहने पर सरकारी विक्रय प्रतिष्ठानों में बिक्री का पूर्ण अभाव रहेगा। पर उसकी उपस्थिति ही बाजार-भाव की 'छाती पर तनी पिस्तौल' सा प्रभाव रखेगी। सरकार का खर्च तो पड़ेगा, सरकार को वहाँ नय से नया माल तैयार रखना होगा और पुराने को किसी दूसरे तरीके से कहीं दूर खपवा देना होगा, पर यह समस्त व्यय सरकार के लिए उस समय तक आवश्यक ही होगा जबतक देश का उत्पादन आवश्यकता से कुछ अधिक नहीं हो जाता।

सरकार अगर इस योजना में दिलचस्पी ले तो इस पर विस्तृत योजना सामने रखी जा सकती है। देश में साधन इतने उपलब्ध हैं कि बिना बाहर से नयी मशीनें मँगाये हर वस्तुओं के बनाने की मशीनों और औज़ारों का निर्माण

यहाँ हो जायगा। वाहर से शायद ही कोई वहुत वड़ी मशीन मात्र मँगानी पड़े। अन्यथा, भारतीय यहीं अपनी आवश्यकता के अनुसार हर सामान, औजार और मशीन वना लेंगे। इसके निमित्त जिन आविष्कारों की आवश्यकता होगी वे स्वयं कर लेंगे। कोई भी देश हो, उत्पादन का अपना अन्तिम आविष्कार दूसरों को नहीं देता। जब वह उसका पूर्ण उपयोग कर लेता है और वह आविष्कार पुराना हो जाता है, तभी वह विदेशियों के हाथ वचा जाता है। यही कारण है कि भारत में विदेश से उत्पादन की मशीनें लाकर भी उत्पादन सस्ता और अच्छा नहीं होता। विदेशी कारखाने अपनी आवश्यकता की मशीनों और औज़ारों को अपने देश में वनवाकर इस्तेमाल करते हैं। हमें भी अपने कार्य की मशीनें स्वयं वना लेनी होगी। यही तरीका है जिस पर चलने से भारतीय जनता की एक भारी संख्या कार्य में जल्द से-जल्द लग सकती है और वाज़ार में उत्तम तथा सस्ता माल उपलब्ध हो सकता है। मेरा अनुमान है कि इस ओर यदि ठीक से प्रगति हो तो देखते-देखते तीन वर्ष के अन्दर ही ५ से ६ लाख आदमियों की आवश्यकता पड़ेगी तथा भारत उद्योगधन्धों में दिन दूनी रात चौगुनी तेज़ी से अग्रसर होन लगेगा। इस दशा में, जनता भी सव राजनीतिक 'दल' और 'वादों' को छोड़ कार्यमें लग जायगी। पंचवर्षीय योजना के साथ ही, जनता की सुख सुविधा और काम-काज के लिए यदि यह योजना भी चलायी जाय तो वह स्फूर्ति उत्पन्न होगी कि हर व्यक्ति अपना स्वयं का उद्योग-धन्धा चलाना शुरू कर देगा। देखते-देखते भारत सम्पन्न हो चलेगा और उसकी अभिलाषा पूरी होगी। सरकार जो मुद्रा इस प्रकार उत्पादन के पीछे प्रसारित करेगी वह जिन्सों के भाव वढ़ाने में न लगकर उत्पादन-वृद्धि द्वारा भाव गिराने में लगेगी। ऐसा मुद्रा-प्रसारण ही दुरुपयोग की आशंकाओं से दूर जन-जीवन के स्तर को उँचा उठा देगा और भारत में, भारतीय मुद्रा और जन-वल से उत्पादित, हर उत्तम से उत्तम वस्तु सुलभ हो जायगी और वाजारें पट जायंगी। उपर्युक्त योजना भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन न कर उसके मूल्य में वृद्धि ही करेगी।

भारत स्वयं एक महान् संपूर्ण देश

संयुक्त राष्ट्रसंघ को प्रेषित भारत सरकार के उपर्युक्त उत्तर से यह भासित होता है कि, वह भारत को केवल एक 'कृषि-प्रधान' देश ही समझती है। पर यह बिलकुल गलत है। भारत सदैव दुनिया का एक महान् औद्योगिक , कृषक तथा आत्मनिर्भर देश रहा है। दूर क्यों, १५० वर्ष पहले तक भारत संसार में अपने उद्योग के कारण अद्वितीय रहा ह। उद्योग तीन प्रमुख विभागों में बँटता है। कपड़ा, रसायन और खनिज । १५० वर्ष पहले तक भारत का कपड़ा, तूतिया, सोहागा, नौसादर, ताँबा, पीतल, प्रसिद्ध 'ऊज'-इस्पात आदि सर्वत्र यूरोप में और पूर्व में चीन, जापान तक जाता था। बदले में, भारत केवल सोना-चांदी ही लेता रहा। भारतीय इतिहास का प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ईसवी सन् ४१४ में भारतीय जहाज द्वारा ताम्रलिप्त बन्दरगाह से चीन वापस गया था। करीब ३ सौ वर्ष पहले तक दुनिया में भारतीय सिक्कों और सामान का वही स्थान रहा जो आज अमेरिका का है।

भारतीय सामग्री की प्राप्ति में अरब और मध्यएशिया का स्थल मार्ग यूरोपवासियों के लिए, तुर्की साम्राज्य के उदय के कारण, अवरुद्ध हो जाने पर, कोलम्बस भारत का जलमार्ग खोजता सन् १४९२ में अमेरिका जा पहुँचा और पुर्तगाली वास्कोडिगामा सन् १४९८ में भारतीय बन्दरगाह कालीकट आ लगा। १०० वर्ष पुर्तगाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा व्यापार कर लेने पर सन् १६०५ में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी और इसके ६४ वर्ष उपरान्त फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी आयी। सन् १७५६ के उपरान्त ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में अंग्रेजी शासन का सूत्र विस्तार किया जो १८५६ तक चलता रहा। अंग्रेजी साम्राज्य विस्तार के विरुद्ध सन् १८५७ में प्रवल गदर हुआ।

ईस्वी सन् १४९८ से १७५६ तक यानी २५० वर्ष तक ये विदेशी कम्पनियाँ भारत में क्या करती रहीं ? सन् १८३० के पहले मशीन पर बना विदेशी सामान भारत में आया नहीं। तब तक क्या भारत आत्मनिर्भर न था ? इस संबन्ध में वीरा एन्सटी नामक ब्रिटिश महिला ने, जो विलायत में इकानमिक कामर्स और पोलिटिकल साइंस की प्राध्यापिका रही हैं, अपनी पुस्तक 'दि इकानमिक डेवलपमेंट आव इण्डिया' १९२९ में जो कुछ लिखा है वह मननीय है। आपने कहा है—"भारतीय सदियों से बहुत बड़ी संख्या में सोने-चाँदी का निरन्तर आयात

करते रहे। यह कहावत प्रचलित हो गयी थी कि 'भारत कीमती धातुओं का समुद्र हो गया है।' यह बात आमतौर से प्रचलित थी कि भारत में अत्यधिक सोने चाँदी का निरंतर आयात होने के कारण, वहाँ वह वेकार ढेर के रूप में जमा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में अपना माल वेच पाने में कठिनाई होती थी। अन्ततोगत्वा विवशतः उसे सोना और चाँदी में ही भारतीय माल का भुगतान करना पड़ता था। विदेशी व्यापारी कपड़ा, सिल्क, नौसादर, नील और भारतीय सुन्दर वस्तुओं को सोना-चाँदी देकर खरीदते थे और उस माल को सुदूर यूरोप, चीन, ईस्ट इण्डियन आइलैण्ड में वेच सोना-चाँदी प्राप्त करते थे। भारत के हाथ यूरोप का वना ऊनी माल, अन्य प्रकार के माल तथा पूर्व से प्राप्त मसाले वेंचते थे। उन्नीसवीं शताब्दि (१८०० ईसवी) के प्रथम दो-तीन दशक तक यही क्रम चलता रहा। वाद, स्थिति में परिवर्तन आया और सर्व प्रथम भारतीय माल यूरोप से लुप्त हुआ। इसी शताब्दि के अन्ततक चीन और जापान की बाज़ारों से भी भारतीय माल का लोप हो गया और सारा वाजार यूरोप की मशीनों से वने माल ने ले लिया। तव भारत कच्चे माल का निर्यातकर्ता और पक्के माल का आयातक हो गया। १८५८ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जगह ब्रिटिश-शाही ने शासन सँभाला तव यह आवश्यक समझा गया कि भारत 'कृषि प्रधान' देश बना रहे और उद्योगों को कोई (खास कर कपड़ा मिल उद्योग को) प्रोत्साहन नहीं दिया गया क्योंकि वलवान ब्रिटिश स्वार्थ को हानि पहुँचती। इस कथन में वहुत-कुछ सत्य ज़रूर है कि भारत को कच्चे माल का निर्यातक तथा यूरोपीय पक्के मालों का वाज़ार वनाया गया। परन्तु, यह १९ वीं सदी के अन्त तक ही रहा और इसके वाद ब्रिटिश नीति में परिवर्तन हो गया।"

यह घातक ब्रिटिश नीति सन् १९२५ तक वनी रही। स्पष्ट है कि ५ प्रतिशत एक्साइज़ ड्यूटी (घरेलू चुंगी) भारत में कपड़े के उत्पादन पर, ब्रिटिश स्वार्थों के हित में, लगी रही। परन्तु प्रथम महायुद्ध के वाद जव एक ओर ११ प्रतिशत इम्पोर्ट ड्यूटी देने के उपरान्त भी, भारत और अमेरिका से कच्ची रूई खरीद कर और उससे ही कपड़ा वनाकर, जापान ने भारत में ब्रिटिश माल को पछाड़ दिया तथा उधर जर्मनी ने भी अच्छा लोहा लिया एवं १९२१ के गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन के कारण ब्रिटिश नीति हिल उठी तव अवश्य ब्रिटिश नीति में १९२९ से ज़ोरों का परिवर्तन हो गया। फिर भी, उसने भारत में अपनी मुद्रा नीति

नहीं बदली। दुर्भाग्य है कि आज की हमारी स्वतंत्र भारत सरकार भी उसी घाट लगी है। भारत के भाग्य में क्या बदा है, परमेश्वर ही जाने। लेखक ने सन् १९३७ में 'इण्डस्ट्रियल रीकन्सट्रक्शन आव इण्डिया' नामक अपनी पुस्तक में भारत के प्राकृतिक साधनों, जैसे जल-शक्ति, आबहवा, कच्चे माल और खनिज पदार्थों के आंकड़ों के आधार पर सिद्ध किया है कि भारत प्रकृत्या ही एक महान् औद्योगिक-कृषक देश है। इस पुस्तक की केवल तीन सौ प्रतियाँ लेखक के पास मौजूद हैं जो निःशुल्क (केवल ।।) डाक खर्च प्राप्त होने पर) जन-साधारण को तत्काल भी प्राप्य हैं। इण्डियन ईयर बुक सन् १९३६-३७ में एक पंक्ति है—"जबकि भारत एक कृषि प्रधान देश है, तब भी जेनेवा के औद्योगिक लेबर आफिस में यह माना गया है कि भारत दुनिया के औद्योगिक देशों में एक बहुत बड़ा देश है।" लाल-क्रान्ति के पूर्व रूस भी कृषि-प्रधान देश ही रहा है। सन् १९२६ में रूस में ८७ प्रतिशत लोग कृषि पर निर्भर करते थे। केवल ९ प्रतिशत ही उद्योग में लगे थे। परन्तु सन् १९३७ तक इस अवस्था में परिवर्तन हो गया और रूस में औद्योगिक उत्पादन बढ़ कर ७४.४ प्रतिशत हो गया और कृषि उत्पादन २२.६ प्रतिशत रह गया। इन आंकड़ों का यह अर्थ नहीं कि रूस में कृषि में अवनति हुई बल्कि यह कि वहाँ की कृषि की तुलना में उद्योग की विशेष प्रगति हुई। यही एक कारण है जिसने रूस के हर व्यक्ति की, हर प्रकार की, स्वतंत्रता सरकार के हाँथों चली जाने पर भी, वहाँ दलतंत्र राज्य स्थापित हो जाने पर भी, वहाँ की जनता में विद्रोह नहीं जगने दिया। रूस उसी काल तक असम्मानित रहा जबतक वह केवल कृषक देश रहा। परन्तु उसके 'औद्योगिक' होते ही वह दुनिया के प्रमुख राष्ट्रों की श्रेणी में आ गया। न जाने क्यों, हमारी सरकार अभीतक गलत रास्ते पर ही अटकी पड़ी है। एक प्रतिशत सूद की दर बढ़ाने से जनता में कर्ज़ की दर और जिन्सों के भाव में ४ प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि होती है। यह अर्थशास्त्र की साधारण बातें प्रकट होते हुए भी जनता अर्थ से खोखली की जा रही है। सरकारी नीति में परिवर्तन हुए बिना उन्नति और जनता में उत्साह आना असम्भव है। प्रकृति ने अमेरिका और रूस की तरह भारत को भी महान् औद्योगिक और कृषक देश बनाया है।

———

मशीन और बेकारी

भारत में यह प्रचलित हो उठा है कि मशीन बेकारी को जन्म देती है अस्तु उसे अपनाना नहीं चाहिये। यह बिलकुल बेबुनियाद और गलत धारणा है। यदि हम कुल आबादी में से २० वर्ष की उम्र के नीचे के लड़के और लड़कियों को शिक्षा प्राप्ति तथा शारीरिक उन्नति के लिए छोड़ दें तथा ६० वर्ष की उम्र के प्राणियों को कार्यभार से मुक्त कर दें तो जो मध्य की आबादी, यानी २० से ६० वर्ष की उम्र तक की बचती है उसकी संख्या भारत में ५० प्रतिशत से भी कम होगी। जापान में ऐसों की संख्या ४६.६ प्रतिशत है। चीन में ४३.५ प्रतिशत है। ब्रिटिश बोर्नियो में ४७.१ प्रतिशत, अमेरिका में ५३.६ प्रतिशत, फ़ांन्स में ५४.४ प्रतिशत, युनाइटेड किंगडम में ५५.७ प्रतिशत, और आस्ट्रेलिया में ५३.८ प्रतिशत है। भारतीय आँकड़े तो प्राप्त नहीं हैं पर चूँकि दुनिया में भारतीय उम्र बहुत कम यानी औसतन केवल २६.७३ वर्ष ही है अस्तु क्रियाशील उपलब्ध आबादी भारत में कुल आबादी की तुलना में ५० प्रतिशत से कम ही होगी। क्रियाशील आबादी में से यदि हम आपाहिजों, रोगियों तथा उन महिलाओं को, जो सगर्भा हैं, जो बच्चे के लालन-पालन में लगी हैं, अलग कर दें तब हमें ३३ प्रतिशत से अधिक आबादी नहीं प्राप्त होगी अर्थात् प्रायः कुल आबादी का एक तिहाई भाग ही बचता है जो कार्यों के लिए प्राप्त होता है। इस १।३ भाग की आबादी को ही, २० वर्ष तक के अपने बाल-बच्चों के लिए, बीस साल के बाद की अपनी सारी उम्र के लिए तथा १ अन्य आश्रित की सारी उम्र के लिए गल्ला तथा अन्य सामान उत्पन्न करना है अर्थात् एक प्राणी को, अपने लिए तथा २ आश्रितों के लिए गल्ला, गृह तथा अन्य दूसरे सामान देना है। एक व्यक्ति अपना और दो दूसरों का बोझ बिना मशीन का सहारा लिये उठा नहीं सकता। अन्यथा, सब दरिद्र ही रहेंगे और जीवन भर गल्ला, कपड़ा, गृह तथा अन्य सामान के लिए तरसते, रोते-कलपते होंगे।

अमेरिका, कनाडा, युनाइटेड किंगडम इत्यादि देशों में १४ वर्ष से ऊपर के लोगों को, जो कार्य्य कर सकते हैं, क्रियाशील आबादी माना गया है। कुल आबादी का प्रतिशत, जो कार्य में लगा है, उसकी तालिका नीचे दी जाती है—

कुल आबादी की तुलना में 'क्रियाशील आबादी' का प्रतिशत इस प्रकार रहा :—

१९४१	कनाडा	... ...४०.५
१९४०	अमेरिका	... ...४०.०
१९३१	भारत	... ...४४.०
१९५१	भारत	... ... ?
१९४७	जापान	... ...४३.३
१९४७	इटली	... ...४१.३
१९३१	यू. के.	... ...४५.७
१९३७	रूस*	... ...१६.४
१९५१	रूस*	... ...२१.१

*रूसी नेशनल इकानमी में क्रियाशील कुल मजदूर और आफिस कर्मचारी।

कुल आवादी की तुलना में 'क्रियाशील कृषक आवादी' का प्रतिशत इस प्रकार रहा :—

१९४१	कनाडा	... ...१०.६
१९४०	अमेरिका	... ...७.०
१९३१	भारत	... ...२९.५
१९५१	भारत	... ... ?
१९४७	जापान	... ...२२.८
१९४७	इटली	... ...१९.४
१९३१	यू. के.	... ... २.७
१९३७	रूस	... ... ?
१९५१	,,	... ... ?

कुल आवादी की तुलना में 'क्रियाशील औद्योगिक उत्पादनरत आवादी' का प्रतिशत इस प्रकार रहा :—

१९४१	कनाडा	... ...८.४
१९४०	अमेरिका	... ...९.३
१९३१	भारत	... ...४.५
१९५१	,,	... ...०.६†
१९४७	जापान	... ... ७.३
१९४७	इटली	... ... ८.७
१९३१	यू. के.	... ... १८.३
१९३७	रूस	... ... ६.०‡
१९५१	रूस	... ... ?

†कारखानों में मशीन से उत्पादनरत आवादी।

‡रूसी नैशनल इकॉनमी में कुल औद्योगिक उत्पादन आवादी।

(हर देश के जो आँकड़े उपर्युक्त विचार पद्धति में उपलब्ध हो सके हैं, दिये गये हैं।)

यदि उपर्युक्त तालिका में से १४ वर्ष से १८ वर्ष तक के और ६० वर्ष के ऊपर की उम्र के लोगों को अलग कर दें तो सब देशों की क्रियाशील आवादी लगभग ३३ प्रतिशत वचती है। भारतवर्ष को समृद्धिशाली राष्ट्र वनाने के लिए यह उचित जान पड़ता है कि क्रियाशील कृषक आवादी घटाकर १० प्रतिशत कर दी जाय और उत्पादन-कर्त्ता आवादी बढ़ाकर १० प्रतिशत कर दी जाय। तव बाकी १३ प्रतिशत क्रियाशील आवादी व्यापार, मकान, सड़क, नगरनिर्माण, शिक्षा, यातायात, स्वास्थ्य, सफाई, सरकारी कार्य, फौज तथा अन्य विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोजनीय होगी।

भारत में मशीन से उत्पादन में लगी आवादी की संख्या अभी केवल ०.६ प्रतिशत ही है। यह वहुत ही कम है। इसे हर हालत में बढ़ाकर ७ अथवा ८ प्रतिशत करना पड़ेगा। बिना ऐसा किये भारत

का जीवन स्तर अन्ताराष्ट्रिय पैमाने पर नहीं आ सकता। भारत की कुल आवादी का ८ प्रतिशत भाग मशीन द्वारा उत्पादन में संलग्न होते ही भारत का उदय संसार के एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में होगा और भारत सुख-शान्ति का अनुभव करेगा। भारत का वर्तमान दु:ख-दर्द समाप्त हो जायगा और वेकारी कहीं दृष्टिगोचर न होगी। आज दुनिया के उन्नतिशील कहे जाने वाले राष्ट्र ५० वर्ष पहले कृषि-प्रधान ही रहे हैं जो नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाता है––

शहरी तथा कृषक आवादी का प्रतिशत इस प्रकार रहा:—

वर्ष		शहरी	कृषक
१९०१	कनाडा	३७.५	६२.५
१९५१	,,	६२.१	३७.९
१९००	अमेरिका	३९.७	६०.३
१९५०	,,	६३.७	३६.३
१९२६	रूस	१७.९	८२.१
१९३९	,,	३२.८	६७.२
१९२०	जापान	१८.१	८१.९
१९५०	,,	३७.५	६२.५
१९३१	भारत	११.१	८८.९
१९५१	,,	१७.३	८२.७

उक्त तालिका वहाँ के निवासियों की क्रियाशीलता का प्रज्वलन्त प्रमाण है। भारत की आवादी के एक वड़े हिस्से को भी इधर लगना है। हर दृष्टिकोण से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि यदि सरकारी नीति सही रास्ते पर परिचालित हो तो भारत में वेकारी के लिए ५० वर्षों तक कोई स्थान ही नहीं है। पर प्रगति उस समय तक नहीं हो सकती जव तक जनता और सरकार दोनों हाथ मिलाकर उत्पादन और निर्माण में न लगें और विदेश से न्यूनतम सामान मँगा कर, वाकी सभी कार्यों के सामान भारत में ही वना लेने की नीति न अपनायें।

प्रारम्भ में हो सकता है कि कुछ सामान वहुत ही उच्चकोटि के न हों, फिर भी जो कार्य शुरू होगा वह ५ वर्षों में उच्चतम कोटि को प्राप्त हुए विना न रहेगा। वेकारी और मशीन के संवन्ध में दो शव्द और कह देना उपयुक्त जान पड़ता है। रूस स्पष्ट शव्दों में वार-वार कहता है कि उसके देश में 'वेकारी' जैसी कोई वस्तु नहीं है। इसके अलावा रूस में ५० लाख व्यक्ति 'कनविक्ट लेवर' हैं। इसके संवन्ध में रूस आँकड़े तो नहीं देता पर उसका कहना है कि 'संख्या का यह अनुमान गलत है और पेनल लेवर से संवन्धित अन्ताराष्ट्रिय सन्धि की अवहेलना नहीं की गयी है।'

अमेरिका स्पष्ट शव्दों में कहता है कि जो क्रियाशील आवादी उसे उपलव्ध है उसका ३ से ५ प्रतिशत सदा ही वेकार रहता है। इसका कारण यह है कि प्राय: लोग एक

ही प्रकार का कार्य्य एक ही स्थान पर जीवन पर्यन्त करने में रुचि नहीं रखते। फिर भी इसके लिए तथा वूढ़ों और अपाहिजों के लिए अमेरिका ने सन् १९३५ में सामाजिक सुरक्षा कानून पास किया है, जिसमें सन् १९५० में पुनः संशोधन हुआ है। मेरे विचार से उक्त नियम के उपरान्त अमेरिका अव पूंजीवाद से निकलकर एक सामाजिक गणतंत्र राज्य वन गया है। इस सामाजिक सुरक्षा का उसके यहाँ अलग खाता है जिसे 'ट्रस्ट एकाउण्ट' कहते हैं। इस मद में सन् १९५२ में ८ अरव ६२ करोड़ डालर की आय हुई और ५ अरव ४ करोड़ डालर खर्च हुआ और ३ अरव ५७ करोड़ शेष वचा। ट्रस्ट एकाउण्ट में प्रायः हर साल २ अरव के ऊपर वचत होती है, जिसका एक वहुत वड़ा हिस्सा सरकारी सिक्यूरिटी में लगाया जाता है और उसकी आमदनी ट्रस्ट खाते में जोड़ दी जाती है। सामाजिक सुरक्षा कानून के कई विभाग हैं। हर वूढ़ों को, आश्रितों को, अपाहिजों को तथा वेकारों को उस एकाउण्ट से वहुत अच्छा भत्ता मिलता है। आम वूढ़ों को वुढ़ापे का उच्चतम भत्ता ५०३-१२-० रु० प्रति मास है। वेकारों को वेकारी का भत्ता रु० १४२-४-० प्रति सप्ताह की दर से २६ हफ्ते तक मिलता है। इसी अवधि में सरकारी, सामाजिक, मजदूर यूनियन और स्वयं उसके प्रयत्न से उसी दर पर कहीं-न-कहीं कार्य मिल जाता है। वूढ़े मजदूर दम्पति को ८१७) रु० महीना जीवन पर्यन्त प्राप्त होता है। इसके अलावा भी हर व्यक्ति की व्यक्तिगत आमदनी होती है जिससे उपर्युक्त भत्ते से कोई सरोकार नहीं। उपर्युक्त दर उच्चतम है। कतिपय स्टेटों (प्राविन्सों) में इस दर में कुछ न्यूनता भी है पर वह अन्तर अधिक नहीं।

सन् १९५१ में रूस में सामाजिक सुरक्षा पर ३९ अरव ८८ करोड़ रूवल खर्च दिखाया गया है जिसके अन्तर्गत अपाहिजों, अधिक वच्चे वाली माँ तथा अन्य लोगों के जीवन-निर्वाह की व्यवस्था होती है।

पर, उपर्युक्त प्रकार की 'सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था' भारत के 'कृषक देश' रहते सम्भव नहीं। भारत में जो फैक्टरी उद्योग हैं वह आवादी का केवल ०.६ प्रतिशत होने के कारण इस उत्तम वोझ को उठाने में असमर्थ है। जो सामाजिक सुरक्षा यहाँ मजदूर वर्ग को दी भी गयी है, वह अन्तराष्ट्रिय वाज़ार की प्रतिद्वन्द्विता में जन-उद्योगों के लिए हानिकर सिद्ध हो रही है और उद्योगों की तरफ से जनता के हृदय में अरुचि उत्पन्न कर रही है। कारण स्पष्ट हैं, यह सव कानून भारत में प्रचलित अर्थनीतिवश स्थिति के अनुकूल नहीं हो रहे हैं। स्वस्थ व्यक्ति की तुलना

में अस्वस्थ बोझ उठाने की क्षमता नहीं रखता। मलाई हितकर है पर शिशु और अस्वस्थ के लिए नहीं। स्थिति अनुकूल न होने के कारण वह अपच उत्पन्न कर जहर सा काम करती है। आवश्यकता है भारत के संबन्ध में सरकारी नीति के परिवर्तन की। सर्व प्रथम भारत को औद्योगिक देश बनाया जाय। उद्योग की प्रगति और जिन्सों के हेरफेर के लिए उपयुक्त योजना के अन्तर्गत मुद्रा सुलभ की जाय। चतुर्दिक उन्नति, जब कुछ हद तक आगे बढ़ जाय, तब सामाजिक कानून और इसके लिए अधिक टैक्सों की व्यवस्था हो तो उत्तम हो। शैशव काल में जहाँ तक हो सके जितना कम बोझ रखा जाय उतना ही हितकर होगा और जनता का भी विश्वास एवं प्रेम सरकार के प्रति उत्पन्न होगा। देश के विभिन्न विषयों के ज्ञाता और अनुभवियों को प्रोत्साहित कर उनका पूरा-पूरा लाभ उठाना नितान्त आवश्यक है। बिना इस नीति पर चले देश की प्रगति कठिन है। जनता का सहयोग सरकार को और सरकार का सहयोग जनता को प्राप्त होना परम आवश्यक है। वह प्रबल रूप में उसी समय शुरू होगा जब सरकार मदद के लिए अपनी जनता को भी साथ में लेगी।

मशीन और प्रकृति

यह विषय एक बिलकुल नया है पर भारत के लिए आवश्यक समझ कर दे रहा हूँ। यह विशेष कर उन लोगों के ही लिए दिया जा रहा है जो अब भी मशीन युग में विश्वास नहीं कर सकते हैं। प्रकृति में दो सम्प्रदाय हैं। एक वनस्पति और दूसरा प्राणी। दोनों एक दूसरे के सहारे अवलम्बित हैं और एक दूसरे के लिए ही जीवित हैं एवं कार्य करते ह। एक के नष्ट होते ही दूसरा भी नष्ट हो जायगा। एक के स्वास्थ्य का दूसरे पर भी प्रभाव पड़ता है।

प्राणी वर्ग जिस वायु को श्वाँस के साथ बाहर फेंकता है—वह कार्बनडाइआक्साइड है जो वनस्पति वर्ग की प्राणवायु है। वनस्पति वर्ग द्वारा उत्सर्जित वायु आक्सीजन है जो प्राणी वर्ग के लिए प्राणवायु है। हवा में जब एक दोष उत्पन्न करता है या उसका संतुलन बिगाड़ता है तब दूसरा उसे ठीक करता रहता है। यदि ऐसा न हो तो दोनों ही मर जायँ। वनस्पति वर्ग का मल-मूत्र फल है, जिसे वह अपने में से बाहर फेंकता है। वही प्राणि वर्ग के लिए अमृत तुल्य है। इसी प्रकार, प्राणि वर्ग का मल-मूत्र, जिसे वह बाहर फेंकता है, वह वनस्पति वर्ग के लिए अमृत

है। एक का शरीर दूसरे का खाद्य है।

प्राणियों के शरीर में हर प्रकार के खनिज सूक्ष्म मात्रा में मौजूद हैं। वे ही खनिज वनस्पति में भी मौजूद हैं। ये खनिज उसी अनुपात में हैं जिस अनुपात में वे पृथिवी के धरातल पर सूक्ष्म मात्रा में फैले हुए हैं। संसार में हर प्राकृतिक चीज़ का अपना स्थान और उपयोग है और वह किसी महत्व के कार्य के निमित्त ही पैदा हुआ है। मधुमक्खी नर वृक्षों के फूलों से बीर्य लेकर मादा वृक्षों के फूलों तक पहुँचा देती हैं। यदि मधुमक्खी का सम्प्रदाय समाप्त हो जाय तो उक्त वर्ग का वनस्पति सम्प्रदाय भी समाप्त हो जाय। मधुमक्खी अपने आनन्द के लिए, शहद ग्रहण के लिए, फूलों-फूलों, पेड़ों-पेड़ों उड़ती फिरती है पर वह अपनी अज्ञानता में प्रकृति के एक महान कार्य का सम्पादन करती है। प्रकृति ने इस विशेष कार्य के सम्पादन -निमित्त मधुमक्खी को विशेष प्रकार का अंग दिया है। बरसात में पानी बरसने पर वनस्पति वर्ग के लिए जब एक तरफ मनुष्य हल चलाता रहता है, दूसरी तरफ छोटे-छोटे जीव-जन्तु चींटी, माटा, केचुए, वीरबहूटी इत्यादि भी जमीन को वनस्पति के लिए भीतर से पोली करती रहती हैं। इनकी वजह से ज़मीन नरम रहती है ताकि शिशु पौधे को जड़ जमाने और गिज़ा प्राप्त करने में आसानी हो। प्रकृति में जिस प्रकार हर वनस्पति का अपना विशिष्ट स्थान है उसी प्रकार हर प्राणि का भी विशिष्ट स्थान और कार्य है। प्रकृति ने उसे उसी प्रकार का अंग दे रखा है। प्रकृति ने फलों में बीज छिपा रखा है, ये चरिन्दे-परिन्दे फलों को खाकर, दूर-दूर तक ले जाकर वनस्पति वर्ग के समुदाय को जीवित रखते हैं। इस प्रकृति में सभी एक दूसरे के सहायक हैं और एक दूसरे के लिए ही पैदा होते, जीते और मरते हैं। मनुष्य अपने को बहुत बड़ा समझे तो वह समझ सकता है पर प्रकृति ने उसे भी किसी विशिष्ट कार्य के निमित्त ही बनाया है, उसे उसी प्रकार के अङ्ग प्रदान किये हैं और उसी के अनुरूप विशेष प्रकार की प्रेरणाएँ दी हैं। आकर्षण, आनन्द और अज्ञान में प्राणी वर्ग अपनी जाति को ही जीवित नहीं रखता बल्कि प्रकृति के प्रति अपने कर्तव्यों का भी प्रतिपालन करता रहता है।

प्राणियों के शरीर में खून प्रधान होता है और खून में प्रधान खनिज पदार्थ लोहा होता है जो हीमोग्लोबिन बनाता है। खून में खराबी आने से मनुष्य हर प्रकार से असन्तुलित हो जाता है। न उसका मस्तिष्क ही ठीक रहता है, न वह दीर्घ जीवी ही होता है और न परिश्रमी। खून उत्पादक अङ्ग 'लीवर' हैं। वह लोहे के रंग का यानी भूरापन

लिये काला होता है। लोहा लाल होने पर खून के रंग का हो जाता है। लोहे के सूक्ष्म थिरकते कणों के ही कारण खून का रंग लाल रहता है। बच्चे के खून में पैदा होने के समय, लोहा आर्गेनिक रूप में रहता है। उम्र के साथ-साथ वह घटता जाता है और शरीर की लालिमा का रंग बदलता जाता है। जब खून में खराबी आ जाती है तब चाहे वैद्य हो या डाक्टर या होमियोपैथ, सभी लोहे को ही किसी-न-किसी रूप में देते हैं। आर्यों का सारा वैद्यक ही खनिजों से भरा है जिसे वे रसायन कहते हैं। दूध में खनिज न्यूनाधिक मात्रा में होते हैं जैसे लोहा, ताँबा, आयोडिन, सोडियम, पोटाशिमय, जस्ता, गंधक, फासफोरस, कैलशियम, मैगनीशियम इत्यादि। खनिज उसी मात्रा में मौजूद रहता हैं जिस मात्रा में उन्हें शरीर में चाहिये। बनस्पति और जानवरों के माँस में भी खनिज पदार्थ होते हैं। प्राणियों का लीवर उन तत्वों को आवश्यकतानुसार ग्रहण करता है, बाकी फेंक देता है। भोजन असंतुलित होने पर लीवर बिगड़ जाता है और खनिजाभाव के रोगों का श्रीगणेश होता है।

जो लोहा प्राणियों के लिए प्राण है, वही मनुष्य की सभ्यता का भी प्राण है। जो गुण लोहे में है वह अन्य धातुओं में नहीं हैं। आज यदि लोहा मनुष्यों से छीन लिया जाय तो उसके सारे यन्त्र समाप्त हो जायंगे, उसकी सभ्यता लुप्त हो जायगी। जो लोहा मनुष्य के शरीर में इतना विशिष्ट स्थान रखता है वही उसके कार्यक्षेत्र में भी उतना ही विशिष्ट स्थान रखता है।

जिन खनिजों की भूमि के तल पर क्षति होती है, उसकी पूर्ति के लिए ही प्रकृति ने मनुष्य सम्प्रदाय को जन्म दिया है। वर्षा, पैदावारों की खपत तथा अन्य प्रकार से पृथिवी के ऊपरी भाग का सूक्ष्म खनिज तत्व बराबर घटता रहता है। मनुष्य भी, मधुमक्खी अथवा अन्य प्राणियों की भाँति, अपने आनन्द, अपने प्रमोद के लिए, खनिज निकालता है और उनका इस्तेमाल करता रहता है जो अन्ततोगत्वा प्रकृति में ही चला जाता है।

लोहा, जो इतना गुणयुक्त है और मनुष्य की सभ्यता में इतना ऊँचा स्थान रखता है, उसमें विनष्टता के दुर्गुण भी विशेष हैं। एक लोहे के टुकड़े को बाहर मैदान में फेंक दीजिये। वह कुछ वर्षों में धूल हो जायगा। आँधी आयेगी और वह धूल आकाश मार्ग से सारे विश्व में फैल जायगी। वह पृथिवी पर फैल कर वायु, धूप, पानी, मिट्टी के प्रभाव से रासायनिक द्रव्य बनकर बनस्पति के शरीर से होता हुआ प्राणियों के शरीर में आ जायगा। यह सब कार्य मनुष्य की

अज्ञानता में चलता रहता है। जिस प्रकार मधुमक्खी नहीं समझती कि वह शहद के प्रलोभन से प्रकृति का कौन-सा कार्य सम्पन्न करती है उसी प्रकार मनुष्य भी नहीं समझता कि अपनी अज्ञानता में प्रकृति का वह क्या कार्य कर रहा है।

बालक के जन्म के साथ प्रकृति माता की छाती में दूध दे देती है। अबोध बालक में अनायास ही जीवन के खोज की प्रेरणा उठती ह और वह माँ की छाती खोजता वहाँ जा पहुँचता है और जीवन-अमृत का पान करता है। माँ भी आनन्द विभोर हो उठती है और बालक को तो जीवन ही मिलता है। किसी भी कारण से यदि बालक दूध न पा सके तो वह तड़प कर मर जायगा। उधर माँ का दूध भी जहर होकर उसे मार डालेगा।

अस्तु, मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह माँ वसुन्धरा की छाती में जो खनिज रूपी दूध भरा है, उसे निकाले, आनन्द करे और प्रकृति को उसके अन्य कार्यों के लिए दे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो प्रकृति का दण्ड उसे अवश्य मिलेगा। वही दण्ड भारत को मिला है और उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूप में मिलता जायगा जब तक वह विनष्ट न हो जाय।

कृषि में जबकि जापान, इटली, युनाइटेड किंगडम और जर्मनी में प्रति एकड़ गेहूँ की उपज १६ से २४ मन है तब क्या कारण कि भारत में वह केवल ७.२७ मन है? प्रति वर्ष जब इटली ३८.२७ और जापान ५१.०१ मन चावल प्रति एकड़ पीछे उत्पन्न करता है तब भारत की औसत उपज १४.६३ मन ही रहती है। स्पष्ट है कि भारत की जमीन स्वस्थ्य नहीं है। उसकी उत्पादित वस्तुओं में भी न्यूनता आ गयी है। इस दोष के कारण यहाँ के चौपायों में भी प्रगतिशील देशों की तुलना में बल नहीं रह गया है। भारतीय गायों में दूध की क्षमता नहीं रह गयी है। ६० वर्ष पहले डेनमार्क की गायों का औसत मक्खन प्रति गाय ८८ पौंड प्रति वर्ष था जो बढ़कर सन् १९३५ में ३५९ पौंड हो गया। ६० वर्ष पूर्व डेनमार्क की गायों की अवस्था भारतीय गायों से कोई अच्छी नहीं रही। स्त्री-पुरुष की औसत उम्र अमेरिका में, सन् १७८९ में ३५ वर्ष थी जो बढ़कर सन् १९३९-४१ में ६३.७४ वर्ष हो गयी। रूस में वह १८९६-९७ में ३२.३९ वर्ष थी जो बढ़कर १९२६-२७ में ४४.३६ हो गयी। जापान में सन् १८९९-१९०३ में ४४·४१ वर्ष थी, जो बढ़ कर सन् १९४९-५० में ५७.९ वर्ष हो गयी। इङ्गलैण्ड में सन् १९१०-१२ में ५३·४२ वर्ष थी जो बढ़कर सन् १९४८ में ६८.७७ वर्ष हो गयी। पर, भारत में स्त्री-पुरुष की औसत उम्र,

जो १८९१ में थी आज भी लगभग वही हैं। भारतीय औसत उम्र १८९१ में २३.७९ वर्ष थी और सन् १९३१ में २६.७३ रही जो विश्व में सब से कम है।

इस विवेचन से प्रकट है कि औद्योगिक प्रगति चतुर्दिक उन्नति का सृजन करती है। न केवल वह खेतों की पैदावार बढ़ाती, जानवरों का वल बढ़ाती, गायों का दूध बढ़ाती, वरन् मनुष्यों की उम्र भी बढ़ा देती है। अमेरिका में इसी ने औसत उम्र लगभग दूनीकर दिया। कम आयु होने के प्रायः तीन ही कारण होते हैं (१) चिन्ता (२) खाद्य का अभाव (३) सफाई का अभाव। भारत में प्राणियों को होश आते ही (लगभग २० वर्ष की उम्र से) चिन्ता धर दवाती है। अपने लिए कमाना, स्त्री और वाल-वच्चों के लिए संग्रह करना और वुढ़ापे के लिए भी वचाना। तिसपर चारों ओर से आफत, क्या करे विचारा! निदान, वह अपनी उम्र को ही खा जाता है। सन् १९४९ में ब्रिटेन में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ९१ पौंड, अमेरिका में १०८ और जर्मनी में ६९ पौंड दूध मिला पर भारत में प्रति व्यक्ति केवल २०.८ पौंड प्रति वर्ष मिला। मवेशियों की संख्या भारत में कम नहीं, वल्कि अधिक है। सन् १९५० में अमेरिका में इनकी संख्या ८४१ लाख रही, ब्रिटेन में १०१ लाख, जर्मनी में १४७ लाख और भारत में १,४७८ लाख रही। आलू इत्यादि तरकारी १९४९ में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ब्रिटेन में ५२ पौण्ड, अमेरिका में २२ और जर्मनी में १०४ पौण्ड प्राप्त हुई। पर, भारत में वही प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष केवल २.७ पौण्ड मिली। कहाँ से पाये उम्र भारतीय जनता! सफाई भी ठीक नहीं, घर द्वार हवादार नहीं, घरों में उपयुक्त सामान भी नहीं। क्या करें भारतीय जन। वह थोड़े ही काल में मर कर अपने दुःख-दर्द से छुट्टी पा लेता है। सन् १९३० में अमेरिका में ९५.७ प्रतिशत लोग शिक्षित थे, सन् १९३९ में रूस में ८२ प्रतिशत थे और भारत में १९३१ में केवल ९ प्रतिशत शिक्षित रहे। मशीन का सहारा न होने के कारण भारतीय जन को उदरपोषण की चिंता से अवकाश कहाँ कि वह शिक्षा जैसी अमूल्य निधि को पा सके और चतुर्दिक उन्नति कर सके। प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या सन् १९५०-५१ में अमेरिका में १९, रूस में ९, ब्रिटेन में २९१, जापान में २२५, जर्मनी में १९५, इटली में १५४ और भारत में ११३ रही। यह भी संकेत करती है कि भारत के लिए औद्योगिक देश होना वहुत आवश्यक है। अमेरिका और रूस से भारत इस माने में पीछे हो पर भारत का स्थान दुनिया के

नकशे में सुन्दर जगह पर होने के कारण यदि वह वैज्ञानिक प्रणाली में तरक्की कर जाय तो यह दोष लाभ में परिणत हो जाय। भारत को खाना, कपड़ा, दूध और सब्जी के लिए पृथिवी औसतन कम नहीं है बशर्ते खेती का उत्पादन वैज्ञानिक ढङ्ग पर हो। सन् १६३०-३४ का औसत धातु खर्च (लोहा, ताँबा, इत्यादि) प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति अमेरिका में ८६७, ब्रिटेन में ५६६, जर्मनी में ३२७ पौंड था पर भारत में वह केवल ११ पौण्ड ही रहा। यह संपूर्ण प्रकरण हमें यान्त्रिक औद्योगीकरण की खुली चुनौती देते हैं। भारतीय रोग की कोई अन्य चिकित्सा दृश्य नहीं होती। यदि भारत में धातु (खनिज) खर्च बढ़ा दिया जाय या यों कहिये कि राष्ट्र को औद्योगिक देशों की श्रेणी में ला दिया जाय तो इसके सारे दोष अवश्य दूर हो जायंगे और जनता सर्वात्मना समृद्ध होकर सच्चे अर्थों में स्वराज्य सुख अनुभव करने का अवसर पा जायगी।

मशीन और सतयुग

प्रकृतिकी ओर से तो सदैव सत्-युग अथवा रामराज्य ही रहता है। उसका नियम एक है जो सदैव अटल रहता है। वह जब अपने नियम में परिवर्तन करती है तब एक सृष्टि समूल नष्ट होकर दूसरा ही कुछ रूप प्राप्त करती है। प्रकृति की ओर से जो भी नियम बनता है वह रामराज्य का ही रहता है। यह तो मनुष्य ही है जो अटल प्राकृतिक नियमों में अपने सामाजिक दोषों के कारण भिन्न-भिन्न 'काल' देखता और अनुभव करता है। सृष्टि में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणिवर्ग है जो स्वयं दुःखी और चिन्तित रहता है और जिस भी अन्य प्राणी पर इसकी कृपा हो जाती है उसे भी नरक का संताप अनुभव करा देता है। दुनिया में जिस क्षेत्र पर मनुष्य की छाया अभी तक नहीं पहुँच पायी है वहाँ के अन्य प्राणीवर्ग प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए सुखपूवक जीवन व्यतीत करते चले आ रहे हैं। वे चन्द घण्टों के परिश्रममें भोजन प्राप्त कर लेते हैं और बाकी समय अपने कुटुम्ब में किलोल में बिताते हैं। पर मनुष्य, जो अपन को बड़ा विचारवान और शक्तिशाली कहता है, अपने सोचे-बनाये सामाजिक नियमोंमें ऐसा उलझा रहता है कि प्राकृतिक सौन्दर्य उसे छू नहीं पाता और संताप में ही वह अपना जीवन समाप्त करता है। प्राकृतिक नियमोंमें मनुष्य को भी केवल चन्द घण्टे ही अपने लालन-पालन में खर्च करना चाहिये और

शेष समय उसके आनन्द एवं बाल-बच्चोंके साथ किलोल का है। सभ्यता के उपलब्ध साधनों का भी मनुष्य अगर ठीक से उपयोग करे तो उसे हफ्ते में केवल २० घण्टे ही कार्य्य करना पड़े और शेष समय उसके शारीरिक-मानसिक उत्थान तथा बालविनोद के लिए उपलब्ध हो। सभ्यता की सहायिका आग से बढ़कर अन्य पदार्थ नहीं पर दुरुपयोगसे वही महान संहारक भी है। विज्ञान और मशीन आग की ही छोटी बहनें हैं। वर्तमान कानूनोंके दाँव-पेंचमें एक ओर तो मनुष्य के एक भाग पर इतना अधिक बोझ पड़ गया है कि वह उसमें पिस रहा है, उधर दूसरा भाग निरुद्यमी और बेकार जीवन का शिकार है। मनुष्य का ऐसा अपना समाज ही कलियुग है, प्रकृतिका दोष नहीं, वह तो सदैव एकरस सत्युगी है। सभ्यताके वर्तमान स्वरूपमें अब मशीनके विवेकपूर्ण उपयोगके बगैर सत्युग का पदार्पण हो नहीं सकता। मशीन-विहीन रहने पर पदार्पण होगा खूनी क्रान्ति का, गुलामी का और अन्तमें सर्वनाश का। अमेरिका सत्युगके निकट है पर दूषित सामाजिक कुरीतियों, दूषित कानूनों और अहंकारमें फंसा कलियुगी कलेवरमें लिप्त है। एक सामाजिक कानूनका वहाँ अभाव है, जो विश्वव्यापी है। वह कानून है, 'क्रियाशील आबादीका वितरण'। क्रियाशील आबादी वितरण कानून वकीलों या राजनीतिज्ञों का नहीं, इसे वैज्ञानिक ही बना सकता है। इसे बनानेमें अत्यधिक सूक्ष्म अनुसन्धान करने पड़ेंगे।

सर्वप्रथम इस बातका पता लगाना होगा कि प्राणीवर्ग के शरीरमें कौन खनिज किस मात्रामें विद्यमान है। वनस्पति वर्गके शरीर में तथा जमीनके ऊपरी भागमें वह किस मात्रा में है। मनुष्य की सभ्यता में वह किस प्रकार उपयोगमें व्याप्त है और किस गतिसे घिसकर या अन्यान्य तरीकोंसे वह प्रकृतिको वापस जाता है। जमीन की सतह पर से कौन-सा खनिज किस मात्रा में और किस गति से विलुप्त होता है, इत्यादि। संतुलन बनाये रखने की दृष्टि से किसी एक काल में खनिजोंका उतना ही उपयोग, मशीन तथा सभ्यता की वस्तु आदि में करना आवश्यक होगा जितना उसका घर्षण और जमीन की सतह पर से खनिजों की विलुप्ति के बराबर हो। सभ्यताकी मशीनों तथा अन्य सामात में लगी खनिजों का घर्षण जमीनकी सतह पर से उसकी विलुप्तिसे कुछ अधिक हो सकता है, पर संतुलनसे कम या अधिक खर्च दोनों ही हानिप्रद होगा। पौष्टिक पदार्थ का अत्यधिक सेवन स्वास्थ्य वर्धक न होकर उलटे विष का गुण धारण कर लेता है और सेवकको मृत्युदण्ड देता है।

यों ही पौष्टिक पदार्थके सेवन में कमीका कुफल भी प्रकट है। सभ्यतामें लगनेवाली मशीन आदि (खनिज) के उपयोगकी एक निश्चित सीमा है, जो जमीनकी सतह पर होने वाली खनिज क्षति और सभ्यता में लगे खनिज के घर्षित—क्षरण अर्थात् विलुप्ति से सन्तुलित है। 'क्रियाशील आवादी वितरण नियम' का आधार उपर्युक्त विचार और साथ ही निम्नलिखित विवेचन भी होगा।

सभ्यताको सन्तुलित रखनेके लिए किन वस्तुओं की कितनी मात्रा प्राणियोंको चाहिये और उनके निर्माणमें कितने साधन तथा कितने प्राणियों की किस सीमा तक आवश्यकता होगी, इसमें मनुष्य की रूचिके लिए यथेष्ट छूट तथा उत्थान की गति अवरुद्ध न होने देने आदि विषयों का भी सामञ्जस्य साधना होगा। इसमें एक वात और भी ध्यान में रखनेकी है। हर प्राणियों की अपनी अलग रुचि, मस्तिष्क, क्षमता, श्रमसीमा इत्यादि होती है। इनके बलपर ही वह साधारण जनसे ऊपर उठकर सम्मान प्राप्त करता है और समाज सन्तुलनको प्रभावित करता है। ३५ कोटि भारतीय जनमें हर व्यक्ति राष्ट्रपति नहीं हो सकता और न इस सम्मानित पदके विशेष सुख और साधन हर साधारण जनको प्राप्त हो सकते हैं। मतलब यह कि सब प्राणी एक ही आधार तुला पर नहीं आ सकते, न हर वस्तुका सामान्य वितरण ही संभव है। लाल वस्त्र सबको प्रिय नहीं। भिन्न रङ्ग, भिन्न स्वाद, भिन्न रुचि, भिन्न विषय, भिन्न अनुराग, भिन्न भिन्न प्राणि के रहते हैं जिनका वितरण मुद्राके आधारसे हो जाता है। ऐसी स्पष्ट भिन्नताएं होते हुए भी लोगों में एक सामान्यता भी है। प्राणियोंके हाथ, पैर, नाक, आँख, जिह्वा और शरीर एक सामान्य आकार प्रकारके होते हैं। फिर भी सूरतमें भिन्नता होती ही है अर्थात् निश्चित सीमाके अन्तर्गत 'क्रियाशील आवादी तथा वस्तुओं का सामान्य वितरण' होते हुए भी, भिन्न पदोंके साथ, सभ्यता के साधनों में भी भिन्नता आ ही जायगी। इस प्रकार योग्यता और क्षमताके आधार पर, मुद्रा द्वारा शुल्ककी भिन्नतामें, हर वातोंकी एक सामञ्जस्य साधना आ जाती है।

क्रियाशील आवादी का वितरण नियम उक्त आधार पर वन जाने पर निश्चित काल में सूचीपत्रों द्वारा सूचित करते रहना होगा कि क्रियाशील आवादी किस तरह वितरित है, किस क्षेत्र में क्या आवश्यकता है और जन-समुदायकी रुचि किस ओर प्रगति कर रही है। इस आधार पर क्रियाशील आवादी स्वयं ही सन्तुलित होती रहेगी। वूढ़े, अपाहिजों, अनाथों आदि की सहायता के लिए निर्मित सामाजिक सुरक्षा

नियम के साथ उपर्युक्त व्यवस्था होने पर ही सत्युग का आगमन हो सकता है अन्यथा नहीं। विश्वके हर क्षेत्र अथवा राष्ट्रमें कुछ न कुछ खनिज, कृषि वस्तुओं और जलवायुमें भिन्नता है। विश्वका कोई क्षेत्र हर विचारसे पूर्ण नहीं है। अस्तु, विश्वमें हर राष्ट्रों में आदान-प्रदान चलता ही रहेगा। क्रियाशील आबादी वितरण नियममें इस पर भी विचार करना होगा।

रूस वर्तमान समय में अन्य राष्ट्रोंके समक्ष कम्युनिष्ट एकतंत्र राष्ट्र अवश्य है पर कुछ काल बाद वह एकातंत्र न रह सकेगा। निर्माण कार्य्य अपनी सीमा पर पहुँचते ही उसे गणतंत्र कर देगा। अगर यह आसानीसे न हो सकेगा तो पुनः लाल क्रान्ति द्वारा वह होकर रहेगा। विश्वकी रूप-रेखा अन्ताराष्ट्रिय संपर्क और विनिमय के कारण तेज़ीसे बदल रही है। सत्युग का आगमन बहुत दूर नहीं है। उसका आगमन होकर रहेगा, चाहे वह विश्वयुद्ध के द्वारा हो, भातृभाव सम्बर्धन द्वारा हो अथवा किसी प्रकृतिद्रोही जिद्दी राष्ट्रमें खूनकी नदियाँ बह कर हो। भारत खूनमें अगर लथपथ होना नहीं चाहता तो उसे यंत्रीकरण अपनाना और जन-जीवन स्तर अन्ताराष्ट्रिय पैमाने पर लाना होगा। भारत को ३३ प्रतिशत से ऊपर क्रियाशील आबादी उपलब्ध न होगी। १० फी सदी कृषि उत्पादनके लिए, १० फी सदी सभ्यताके अन्य उत्पादन के लिए और १३ फी सदी राष्ट्रके अन्य कार्य्यों के लिए—जैसे व्यापार, गृह निर्माण, यातायात, सफाई, स्वास्थ्य, सुरक्षा व्यवस्था (फौज, पुलिस), शिक्षा आदि के लिए। एक औद्योगिक व्यक्तिको १० व्यक्तिके लिए उत्पादन करना है। खेतीमें लगने वाले सामान भी बनाना है और सबको अन्ताराष्ट्रिय पैमाने पर लाना है। स्वयं चालित यंत्रोंकी सहायता बगैर इसकी पूर्ति हो नहीं सकती। समय थोड़ा है, कार्य अधिक है पर भारतके सूत्रधार घोर तन्द्रामें लिप्त हैं। ठेस लगने पर भी उनकी झपकी नहीं खुल रही है। प्राचीन स्वप्न को वे छोड़ नहीं पा रहे हैं, प्रगति का समय बीता जा रहा है। उनके हृदयमें भारतीय योग्यता और क्षमताके प्रति अविश्वास उत्पन्न हो गया है। भारतीय जन प्रगति करें तो कैसे?

रूस में जब १९१७ में लाल क्रान्ति हुई तब अन्य प्रगतिशील राष्ट्रोंने रूससे सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। रूस स्वयं बड़ा आलसी और निरुद्यमी था। किसी को विश्वास न था कि रूस के आलसी जन राष्ट्र निर्माणमें प्रगति कर सकेंगे। यहाँ तक हुआ कि रूसी वैज्ञानिकों और प्राविधिज्ञोंने भी अपना हाथ राष्ट्र निर्माणसे खींच लिया। पर रूसी अनभिज्ञ मजदूरों ने स्वयं

निर्माण का कार्य हाथ में लेकर निर्माण और प्रगतिके तरीकों पर विचार शुरू किया और वृहद प्रगति की सृष्टि कर डाली। उनके परिश्रमने विश्वमें एक और शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमें कम्युनिस्ट रूसका विकास किया और दुनिया के अन्य राष्ट्र रूस से पुनः सम्वन्ध स्थापित करने को आतुर हो उठे।

भारतके माननीय कर्णधारोंमें वैसा आत्मविश्वास, अपनी जमीन, अपने आकाश, अपने जलवायु के प्रति कब जागेगा? सत्युगके आगमनके पूर्व भारतमें क्या होकर रहेगा, इसे भगवान ही जाने।

नव आविष्कृत मशीन और भारत सरकार

मिस्टर एण्ड्रूज के शिष्य श्री रामचंन्द्रन् ने, जो शान्तिनिकेतन के एक विद्यार्थी भी थे, महात्मा गांधी से प्रश्न किया—'बापू, क्या आप सब प्रकार की मशीनों के विरोधी हैं? बापू ने हँस कर उत्तर दिया—"यह कैसे सम्भव है जब कि मैं जानता हूँ कि हमारा शरीर ही उत्तम मशीन है? चरखा स्वयं प्रमाण है। मैं विरोधी हूँ मशीन के पागलपन का, न कि मशीन का। लोग श्रम और समय की बचत के लिए मशीन का इस्तेमाल बढ़ाते हैं जिससे हजारों बेकार होकर भुखमरी के शिकार होते हैं। 'दूसरे प्रश्न के उत्तर में महात्माजी ने कहा 'मशीन का आधिपत्य मनुष्यों पर न होकर, मनुष्यों का आधिपत्य मशीन पर होना आवश्यक है। सिङ्गर मशीन उत्तम उदाहरण है; श्रम बचत का उत्तम साधन है। श्री सिङ्गर ने अपनी पत्नी की परेशानी, श्रमबोझ और कपड़ा सीने के कठिन तरीके को देख कर, प्रेम से विह्वल हो, पत्नी को श्रम-कठोरता से बचाने के लिए सिङ्गर मशीन बनायीं थी। श्री सिङ्गर ने अपनी पत्नी को ही आराम नहीं पहुँचाया बल्कि उसने तमाम उन लोगों के श्रम की बचत की जो मशीन खरीद सकते हैं। ('टू दि स्टूडेण्टस', गांधी सीरीज? संपातक एवं प्रकाशक—श्री आनन्द टी. हिङ्गोरानी।)

बापू जी आविष्कार के भी विरोधी नहीं थे। सन् १९३५ से सन् १९३८ तक अखिल भारतीय चर्खा संघ की ओर से ७५ हजार रुपये का पुरष्कार घोषित रहा। बापू जी एक ऐसा चर्खा चाहते थे जिसे एक साधारण ग्रामीण चला सके, जिसमें प्रचलित चर्खे की अपेक्षा महीन, एक रस, २० गुना सूत तैय्यार करने की क्षमता हो। लेखक भी इस ओर सन् १९३५ में आकर्षित हुआ और सन् १९३६ में अमदाबाद, साबरमती

आश्रम में प्रतिद्वन्द्विता में उपस्थित हुआ। वहाँ काशी के एक और सज्जन अपना चर्खा लेकर पधारे थे। किर्लोस्कर और अन्य कितने लोगों ने भी प्रयास किये। सबके आविष्कार प्रथमावस्था के थे। उपर्युक्त परिभाषा की श्रेणी के आविष्कार के लिए ३ वर्ष का समय बहुत ही अपर्याप्त रहा। साधारणतः संसार के प्रत्येक उपयोगी आविष्कार ने ७ से १० वर्ष तक का समय लिया है। अगर आवश्यक काल तक पुरष्कार घोषित रहता तो भारतीय मस्तिष्क ने आविष्कार उपलब्ध कर दिया होता।

विरोध होना ही आविष्कार का उसकी व्यापक उपयोगिता का प्रमाण है। पर कुछ काल बाद वही आविष्कार राष्ट्र की निधि होकर सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रगतिशील कर देता है। रेलगाड़ी, छापा मशीन, सिङ्गर मशीन, मोटर गाड़ी, सूत कातने की मशीन, कपड़ा बुनने की मशीन इत्यादि इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। काशी में पानी कल की स्थापना के साथ "राम हल्ला" हुआ और कितने मौत के घाट उतर गये। स्टिफेन्स की प्रथम रेलगाड़ी, 'राकेट' की रेल पटरियों को लोगों ने उखाड़ कर विघ्न उत्पन्न किये, पत्थरों से स्टिफेन्स का स्वागत हुआ। मोटर गाड़ी के आगमन से पूर्व ब्रिटेन में स्टीम गाड़ी जब सड़क पर चलायी गयी तब घोड़ा गाड़ी के व्यवसाइयों ने प्रबल विरोध किया। सरकार ने भी विरोधी कानून बनाये जिसमें सन् १८९६ में संशोधन किया गया और मोटर गाड़ी अन्ततः बाज़ार में आयी। उक्त कानून के कारण, ब्रिटेन विश्व में मोटर-व्यवसाय में पिछड़ गया। छापा मशीन का भी जर्मनी में प्रबल विरोध हुआ। सिङ्गर मशीन का भी अत्यधिक विरोध हुआ। २० कपड़ा सीने वाली अमरीकी विधवाओं का कार्य्य वह अकेले हीं करती रही और उनके भी सामने बेकारी की विभीषिका उपस्थित रही। हार्ग्रीव की सूत कातने की 'जेनी', कार्टराइट के कपड़ा बुनने के 'लूम' को भी विरोधी तूफानों का सामना करना पड़ा। यह सब होते हुए भी आविष्कार संसार में आकर ही रहे। रेलगाड़ी, छापा मशीन, मोटरगाड़ी, कपड़ा सिलाई मशीन, बिजली के पंखे, टेलीफोन, तार, आटा चक्की, माईक्रोफोन, लाउड स्पीकर, रेडियो, हवाई जहाज़ इत्यादि का आज के युग में कौन विरोधी है? गाँधीजी स्वयं सिलाई मशीन को बेकारी का साधन नहीं मानते। रेलगाड़ी, तार, टेलीफोन, मोटरकार, बिजली के पंखे इत्यादि से उन्हें घृणा नहीं रही। कारण स्पष्ट है। मशीन

का जब उपयोग हो जाता है तब वह मनुष्य के दैनिक जीवन की वस्तु हो जाती है और सभ्यता-विकास का वह साधन बन जाती है। आविष्कार जब सहायक और कष्ट निवारक होकर आता है और सस्ते में सुन्दर माल उपलब्ध कर देता है तब समाज उसका ऋणी हो जाता है। हाथ से कपड़ा सीने के लिए, हाथ से आटा पीसने के लिए, बिजली रहते पंखा खींचने के लिए, आज कौन तैय्यार है? बिजली रहते आज कौन किरासन लैम्प का प्रबन्ध करता है? लैम्प रहते कड़ू तेल का दिया आज कौन जलाता है? सर्जन के औजारों को देखकर रोगी तो जाने दीजिये, दर्शक को मूर्छा आती है। पर रोगी को जब आराम होता है तब वह और दर्शक सर्जन के प्रशंसक हो जाते हैं। आविष्कार आरंभ में सदैव डरावना प्रतीत होता है पर, उसका फल मधुर और सुखद ही रहता ह।

रूस ज़ोरों से यंत्रीकरण कर रहा है पर वहाँ बेकारी कहाँ है? एकतंत्र राज्य में यह सम्भव हो सकता है कि कोई बेकार न रहे क्योंकि वहाँ कार्य्य कानूनी सिकञ्जों में जकड़ा रहता है और व्यक्तिगत इच्छा नहीं रह जाती पर, गणतंत्र समाज में यह सम्भव नहीं कि एक व्यक्ति, जीवन पर्यन्त, एक ही स्थान पर, एक ही कार्य्य करता रहे और न यह सम्भव है कि किसी की इच्छा और रुचि के विरुद्ध उसे कार्य्य पर लगाया जा सके। प्रायः लोग अपने को बहुत योग्य समझने लगते हैं परन्तु जब तक कठोर अनुभव उन्हें रास्ते पर नहीं लगाता तब तक वे किसी कार्य्य और पारितोषिक पर नहीं अटक सकते। ऐसी परिस्थिति में, क्रियाशील आबादी का २ से ३ प्रतिशत और सम्पूर्ण आबादी का १ से १॥ प्रतिशत सदैव बेकार रहेगा ही। इन लोगों को अमेरिका ने बेकारी का भत्ता ६ मास तक १४२—४—० प्रति सप्ताह की दर से देकर बेकारी (कार्य्य परिवर्तन) के समय को भी आदर्शयुक्त कर दिया है। उक्त योजना के अन्तर्गत संसार में सबसे अधिक यंत्र युक्त होकर अमेरिका में भी 'बेकार' कहाँ रहे? असली बेकार संसार में उन्हीं क्षेत्रों में दृष्ट है जो यंत्रविहीन हैं जैसे भारत। बेकारी की वास्तविक जननी मशीन नहीं, सामाजिक दुर्व्यवस्था है।

आविष्कार का और राष्ट्र की औद्योगिक प्रगति का सीधा सम्बन्ध रहता है। सन् १९३० से लगाकर सन् १९३७ तक के आविष्कारों की सालाना औसत भिन्न राष्ट्रों में इस प्रकार रही—

अमेरिका	४८,६९७
जर्मनी	२०,६२१
फ़ान्स	२०,०२५
यू० के०	१८,४१७
इटली	१०,६३४

वेलजियम	७,३१५
स्विटज़रलैण्ड	७,३०७
जापान	४,८४५
भारत	८९८

(भारत के ८९८ औसत आविष्कारों में से भारतीय जन के आविष्कारों की सालाना औसत केवल ४० से ५० तक ही रही, शेष सब विदेशियों के ही आविष्कार रहे)

हालैण्ड ने परीक्षार्थ सन् १८६९ में अपने यहाँ के पेटेन्ट कानून को समाप्त कर दिया। फलत: हालैण्ड की प्रगति रुक गयी और ४३ वर्षों में उसके निर्यात-व्यापार में अवनति को छोड़ कोई प्रगति नहीं हुई। जव उसको अपनी भूल मालूम हुई तव सन् १९१२ में उसने पुन: पेटेण्ट कानून को अपनाया और तब निर्यात-व्यापार में ज़ोरों की प्रगति शुरू हुई (दी पेटेण्ट आफिस सोसाइटी सीरीज़ नं० १ पन्ना २ से) भारत संसार में वहुत पिछड़ा राष्ट्र है। यहाँ के लोगों की आविष्कारक-प्रवृत्ति विदेशी शासन काल में विलुप्त हो गयी। भारत की आज़ादी के साथ-साथ भारतीय आविष्कारक प्रवृत्ति भी जगी है। इसका प्रमाण केन्द्रीय सरकार के साप्ताहिक पेटेण्ट आफिस का गजट है। आज़ादी के पहले भारत के पेटेण्ट आफिस में जो दरखास्तें पड़ती रहीं उनमें भारतीयों का नाम विदेशियों के अनुपात में प्राय: शून्य-सा रहा। पर, इधर ५ वर्षों में भारतीय आविष्कारकों की संख्या करीब २० प्रतिशत तक पहुँच गयी है। (पारस्परिक संवन्ध कानून के अन्तर्गत प्रत्येक राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति दूसरे राष्ट्र में अपने आविष्कार का पेटेन्ट ले सकता है)। भारत की आविष्कारक प्रवृत्ति में जागरण के चिह्न स्वरूप 'वीड़ी' उत्पादन 'सम्वन्धी कुछ भारतीय आविष्कार भी हुए हैं। यह सुनने में आ रहा है कि भारतीय सरकार इन भारतीय आविष्कारों पर रोक लगाने का विचार कर रही है। अगर भारत सरकार ऐसी कोई कार्य्यवाही करती है तो इसका नतीज़ा वड़ा ही भयावह होगा। भारतीय आविष्कारक प्रवृत्ति विलकुल कुचल उठेगी। आविष्कार करना साधारण वात नहीं और न हर व्यक्ति आविष्कारक हो सकता है। किसी भी सफल आविष्कार के पीछे अत्यन्त कष्ट, निरन्तर विचार, घोर परिश्रम, सर्व प्रकार का शारीरिक, मानसिक और आर्थिक वलिदान निहित रहता है। यह कष्ट युक्त त्याग एक अथवा दो वर्ष में ही समाप्त नहीं होता वल्कि कम-से-कम ७ वर्ष के ऊपर ही चलता रहता है। तव कहीं आविष्कारक पूर्ण सफल होता है। अगर सरकार आविष्कार को कानून द्वारा समूल वन्द कर दे तो भारतीय प्रगति भी समूल बन्द हो जायगी। जिसे चाहे शुल्क देकर आविष्कारक नहीं वनाया जा सकता। लाखों

में एक मूर्ख आविष्कारक हो जाता है और दर्जनों आविष्कारक में एक अथवा दो ही सफल होते हैं। सरकार की तरफ से आविष्कार के प्रति एक भी गलत कदम राष्ट्र की चेतना को विष देना होगा। काँग्रेस के शासनकाल में अगर एक भी इस प्रकार की दुर्घटना घटी तो जब तक कांग्रेस सरकार शासनारूढ़ है भारत की प्रगति सर्वथा अवरुद्ध रहेगी। भारत में आविष्कार का कष्ट कोई वहन नहीं करेगा और भारत के जन, 'आविष्कार करना' एक महान् अपराध अनुभव करेंगे।

कहावत प्रचलित है कि आविष्कार आवश्यकता को जननी है। 'बीड़ी उद्योग' में सन् १९१० से ही आविष्कार की बड़ी आवश्यकता उत्पन्न हो गयी थी। इसकी पुष्टि भारत सरकार द्वारा नियुक्त 'लेवर इन्वेस्टिगेशन कमेटी की रिपोर्ट' से होती है। इस कमेटी की नियुक्ति सन् १९४३ में भारत सरकार द्वारा 'बोड़ी' सिग्रेट, सिगार उत्पादन में लगे मज़दूरों की हालत की जाँच के सम्बन्ध में हुई थी। उक्त कमेटी ने लिखा है—'भारत के व्यवसायों में बीड़ी व्यवसाय एक बहुत बड़ा बेढङ्गा भारतीय व्यवसाय है। इसका भविष्य सस्ते सिग्रेट के कारण पूर्ण अंधकार में है। बीड़ी को सस्ती करने के लिए यह भी एक तरीका हो सकता है कि प्रान्तीय जंगल विभाग स्वयं बीड़ी पत्ता बटोरे और एक निश्चित दर पर बेचे।' (पन्ना ९ पैरा ३)। सस्ते सिग्रेट 'चार मीनार' की प्रतिद्वद्विता के कारण हैदराबाद राज्य भर में विगत ७ वर्षों में बीड़ी की खपत ९० प्रतिशत घट गयी। इस खोये हुए बाज़ार को पुनः प्राप्त करना जरूरी है। विदेश में भारतीय बीड़ी की खपत तेज़ी से गिर रही है। इसका भी पुनरुत्थान परम आवश्यक है। यह कितना बड़ा अन्याय है कि प्रतिद्वन्द्वी सिग्रेट व्यवसाय को खुली छूट हो कि वह आधुनिक यंत्रों से युक्त रहे और भारतीय बीड़ी -यंत्रों के आविष्कार पर रोक लगा दी जाय। अगर यही अवस्था बनी रही तो बीड़ी व्यवसाय तीन दशक के भीतर निश्चित ही समाप्त हो जायगा।

बीड़ी व्यवसाय के यंत्रीकरण के सिलसिले में सन् १९१० से ही भारतीय प्रयास शुरू हो गया था। सन् १९२० में श्री गङ्गाधर रामचन्द्र मन्द्रूलकर ने असफल प्रयत्न किया। सन् १९५३ में श्री के० नारायण ने भी असफल प्रयत्न किया। सन् १९३६ से सन् १९३९ तक जर्मन फर्म 'डाक्टर इञ्ज. सी. विकेन एण्ड कम्पनी ने बहुत कोशिश की और तीन असफल प्रयास किये। सन् १९४० से सन् १९५२ तक कलकत्ता के लाल विहारी चटर्जी और दिलीप कुमार चटर्जी बन्धुओं ने प्रयास किया और एक प्रावेइट कम्पनी दी इनवेण्टर्स

इण्डस्ट्रियल कारपोरेशन लिमिटेड के हाथ सन् १९५२ में अपना पेटेण्ट वेंचकर आविष्कार के कठिन कष्ट एवं श्रम से संन्यास ले लिया। सन् १९४५ से सन् १९५२ तक बनारस के श्री कन्हैयालाल गुप्त ने प्रयास किया। नाशिक के नरहर खाण्डेराव क्षीरसागर ने सन् १९४८ से प्रयास शुरू किया। पूना के श्री लक्ष्मण हनुमन्तराव फाटके ने सन् १९४९ से प्रयास शुरू किया। क्षीरसागर और हनुमन्त राव को भी प्रयास करते ८ अथवा १० वर्ष के ऊपर ही लगा। पर, पेटेन्ट की दरखास्तें, क्रमानुसार इसी प्रकार हैं। भारतीय व्यवसायियों के सहयोग में सन् १९५० में जापान की किया कम्पनी लिमिटेड के मिस्टर औज़न् ने भी प्रयास शुरू किया पर भारतीय आविष्कार सफल हो जाने से प्रयास छोड़ दिया। ब्रिटिश मिस्टर निकोलसन ने भी एक एक अंग्रेजी फर्म के सहयोग से प्रयास किया था, मगर उसका पूर्ण विवरण लेखक को प्राप्त नहीं हो सका। उपर्युक्त प्रयास सब अपने ढङ्ग के निराले हैं और एक दूसरे से कोई भी सम्बध नहीं। भारतीय प्रयास सन् १९४० के उपरान्त जो भी हुए, उत्तम श्रेणी के हैं। इसकी जाँच चुनौती के साथ की जा सकती है। उपर्युक्त तमाम प्रयासों में तेजी, सुविधा और व्यवहार की दृष्टि में बनारस का ही आविष्कार आटो-वीड़ी-मशीन का सफल हो सका है। वीड़ी की वर्तमान खपत के आधार पर करीब ४० हज़ार ऐसी आटो वीड़ी मशीनें व्यवसाय के लिए आवश्यक होंगी। अगर आविष्कारक पूरे प्रयास से वर्ष में ६०० मशीन भी निर्माण कर ले तब भी करीब ६५ वर्ष निर्माण में लगेंगे। अतएव, वेकारी की कोई समस्या इस मशीन के प्रचलन से सामने आती नहीं। सरकार को आविष्कारों की रोक के पीछे सर दर्द मोल लेना व्यर्थ है। अच्छा हो कि भविष्य के लिए सरकार उन विषयों की घोषणा कर देने की वात सोचे जिन पर वह आविष्कार, अनुसन्धान या उन्नति नहीं चाहती। आविष्कारक यों ही समाज के निकम्मे और मूर्ख व्यक्ति होते हैं। घोर परिश्रम और सर्वस्वाहा कर लेने के वाद उनकी खुशी उनसे छीन लेना कहाँ का न्याय है? सरकार अपने पेटेण्ट कानून में भी इस हेतु आवश्यक परिवर्तन करले तो और भी अच्छा हो।

आविष्कारों के कारण तो आज तक संसार में प्रगति को छोड़ वेकारी कहीं नहीं पनपी। अकेले भारत में ही वह कैसे वेकारी को जन्म दे सकता है? सिङ्गर मशीन के पदार्पण ने भी बेकारी की विभीषिका से अमरीकी विधवाओं को दहला दिया था पर क्या कभी उनका डर साकार हुआ? क्या वापूजी ने

भी उसे बेकारी का अस्त्र माना ? यह केवल भ्रम ही है कि मशीन बेकारी की जननी है। बेकारी तो सामाजिक दोषों और राष्ट्र की प्रगति रुकने के कारण होती है।

लेखक डंके की चोट पर कहता है कि बीड़ी मशीन के प्रचलन से बेकारी कदापि न बढ़ेगी वरन् बेकारी की विभीषका केवल भ्रम ही ठहरेगी। बीड़ी व्यवसाय में इसके द्वारा बेहद उन्नति ही होगी, नये बाज़ार प्राप्त होंगे। मशीन बनाने, चलाने, मरम्मत इत्यादि विषयों से राष्ट्र में एक नये जीवन और चेतना का संचार होगा। भारतीय आविष्कार भारतीय ग्रामों में पहुँचकर प्रगति की ओर राष्ट्र को अग्रसर करेगा भारत की आज़ादी का उत्साहवर्धक श्रीगणेश भी तभी सम्भव होगा। मशीन से डरना विदेशों की दासता स्वीकार करना होगा और विदेशियों की गुलामी के जाल में पुनः फंसना होगा। भारतीय आविष्कारों की प्रगति को रोकना भारत के प्रति आत्मघात करना होगा। श्रम बचत और उसके सदुपयोग को तत्परता के बगैर भारत का विकास सम्भव नहीं। राष्ट्र की प्रगति के साथ समझदार श्रमिकों की माँग भी बढ़ेगी। अगर आविष्कार न होंगे तो वे कहाँ से प्राप्त हो सकेंगे ? लेबर इन्वेस्टिगेशन कमेटी को अपनी जाँच के सिलसिले में यह भी अनुभव हुआ कि बीड़ी व्यवसाय में अत्यधिक मजदूर लगे रहने के कारण कतिपय क्षेत्रों में सरकारी 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' को प्रोत्साहन न मिल सका। कारण, लोग बीड़ी बनाना छोड़कर इस सरकारी कार्य्य के लिए तैय्यार न हो सके। (पन्ना १२ पैरा ३)। खेतिहर अनभिज्ञ होता है। कलाकार का अभाव भारतीय प्रगति को अवरुद्ध करेगा। बीड़ी मशीन पर रोक भारतीयों में आविष्कार के प्रति कुभाव उत्पन्न करेगी जिससे राष्ट्र का महान अहित होगा। क्या सरकार रोक लगाने जैसी कोई गलत कदम उठाने के पूर्व उपर्युक्त गम्भीर बातों पर विचार करेगी ?

लेखक इसे स्पष्ट कर देना चाहता है कि बीड़ी मशीन भी सर्वांश में ग्राम उद्योग की ही वस्तु है। भारतीय गाँवों में पहुँच कर वह ग्रामीण घरों को आधुनिक औद्योगिक शालाओं में परिणत कर देगी। यह बीड़ी मशीन कपड़ा सिलाई मशीन या तेज चाल वाली चर्खा मशीन, जिसके आविष्कार की गाँधी जी कल्पना करते थे, या चीनी या अन्य दूसरी कृषि मशीन जैसी ही उपयोगी है जिसे ग्रामीण अपनी सहायता में इस्तेमाल कर सकता है।

———